जय एकलिंग

[राष्ट्रीय, सामाजिक और पारिवारिक पृष्ठभूमि में आज के युग की समस्याओं से समन्वित, ऐतिहासिक उपन्यास]

परदेशी

अनुराग प्रकाशन, अजमेर

जय एकलिंग

"यह एकलिंग का आसन
इस पर न किसी का शासन
राणा तू इसकी रक्षा क
यह सिंहासन अभिमानी है !"

: १ :

चित्तौड़गढ़ के विशाल राजमार्ग पर, अत्यन्त गम्भीर और मधुर, बहुत बुलन्द और शानदार एक स्वर गूँज रहा था—

"घणीखम्मा अन्नदाता ! घणीखम्मा !!···क्षत्रिय-कुल-मयंक शत्रुलंक मेंह निःशंक...चंदेरी के महाराजकुमार, मेदपाट के परम पुण्यवान्···भाणेजलालजी पधार रहे हैं···धन्य-धन्य धरतीधणी, रायमल्ल सिरमौर ! गढ़वंका सिसोदिया, रणवंका राठौर !! वढ़े जाओ मेहरबान !···महाराजकुमार मेदिनीराय का मार्ग प्रशस्त हो !···मार्ग दीजिए···"

एक लम्बे कद का, ऊँचा पूरा, वीर, वृद्ध चारण अपने गम्भीर स्वर में पुकार रहा था। उसके पीछे-पीछे तरुण मेदिनीराय था।

दोनों महाबली महाराणा के निजी कक्ष तक पहुँच चुके थे। भीतर अत्यन्त तेजवन्त, प्रचण्ड, प्रतापी राजपुरुष, किसी निकट जन से कह रहा था—"मेदिनीरायजी को मेवाड़ के युवराज के समान पद-मर्यादा और सम्मान सहित सादर लिवा-लाओ वे हमारी परम भाग्या, पूज्या भगिनी के स्मृति-चिह्न हैं।"

"अन्नदाता, बाहर प्रतिहारियों के स्वर उठ रहे हैं, शायद महाराजकुमार पधार रहे हैं।"

"अच्छी बात है। फिर तो हम उन्हीं के साथ सभा में जाएँगे। आज वे भी पहली बार महाकालेश्वर भगवान् एकलिंग का दरबार देखेंगे।"

तब तक राजकीय उच्चाधिकारियों, महाराणा के अंगरक्षकों, सामन्तों और मन्त्रियों की स्वागत-मण्डली से घिरा मेदिनीराय आ पहुँचा—

"घणी खम्मा अन्नदाता।" कहकर मेदिनीराय ने सिर झुकाकर, हाथ बढ़ाकर महाराणा के चरण छूने का प्रयास किया, किन्तु उसके पूर्व ही महाराणा रायमल्ल ने उसे छाती से लगा लिया—

"आज हमारी पुण्यवती बहन की स्मृति फिर से सजीव हो गई। बिल्कुल माँ-जैसा ही चेहरा है... बहुत वर्षों बाद आए!" इतना कहते-कहते महाराणा की आँखें भर आईं। सामन्तों और मन्त्रियों ने सिर झुका लिए।

उद्घोषक ने घोषणा की—"पधारिए, सर्वजन भगवान् एकलिंग के राजदरबार के मुहूर्त का स्वागत करने पधारिए!"

सुनकर सब लोग राजदरबार की ओर चल दिए। सबके जाने पर, मेदिनीराय के साथ महाराणा ने भी प्रस्थान किया।

महाराणा रायमल्ल का—भगवान् एकलिंग के 'दीवान' का दरबार देखकर, मेदिनीराय देखता ही रह गया! शौर्य, शक्ति, ऐश्वर्य, वैभव, वीरता, त्याग, तप, तेज और तारुण्य का प्रखर प्रदर्शन यहाँ प्रस्तुत था।

महाराणा के प्रविष्ट होते ही चारणों ने अत्यन्त शौर्य-सम्पन्न—वीरों के भुज-दण्डों को फड़कानेवाले गम्भीर किन्तु मधुर स्वर में डिंगल के दोहों और सोरठों का पाठ प्रारम्भ किया।

पृष्ठभूमि में कमनीय, कान्त कंठ से अत्यन्त रूपवन्त गायिकाएँ संस्कृत के गीतों का गान कर रही थीं। वाद्य-यन्त्रों से अत्यन्त मन्द स्वर उठ रहा था और इन सब के बीच वीरों की तलवारें सुशोभित थीं और मर्दों की मूंछें चमक रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था, मानो

नर-सिंहों का मेला लगा है, अथवा वनराजों की महफिल है ! मेवाड़ के अत्यन्त मूल्यवान् मणिमुक्ताओ, रत्नों और हीरों से खचित स्वर्ण सिंहासन पर राजमुकुट धारण किए महाराणा रायमल्ल विराजमान था। यह सिंहासन व्यक्ति रायमल्ल का नहीं, मेवाड के महाराणाओं का नहीं, भगवान् एकलिंग का आसन था। अत: महाराणा एक ओर हटकर बैठा था, बुद्धिमान् महामन्त्री जिस प्रकार अपने स्वामी नरेन्द्र के आसन पर, आवश्यकता पड़ने पर बैठ कर, राजकाज सँभालता है, उसी प्रकार एकलिंग का महामन्त्री या दीवान—महाराणा रायमल्ल सिंहासन पर सुशोभित था। उसके एक हाथ में दुर्गा-चण्डी की दी हुई अति कराल कालमुखी तलवार थी, जो अपनी अलौकिक छटा छिटका रही थी।

राणा की आयु कठिनाई से तीस वर्ष की होगी, किन्तु उसके शरीर पर पचास से अधिक घाव विद्यमान थे।

मेदिनीराय भी अपने विशेष आसन पर आसीन था। वह ध्यान से इस देव-सभा के सदस्यों और सूरमाओं को देख रहा था। एक सौ आठ प्रधान सामन्त थे, इक्कीस मंत्री थे, अन्य पण्डितों की मण्डली के प्रकाण्ड पण्डित थे। राजकवि, चित्रकार और कलाकार थे। राजगायिका, राजनर्तकी और अन्य नर्तकियाँ थीं। गर्व में सम्मानीय महाराणा के संग रणांगणों में रहने वाले राजचारण थे। राजपुरोहित थे। राजदूत थे। देश-देशान्तरों और द्वीप-द्वीपान्तरों के प्रतिनिधि और दूत थे। वन्दी म्लेच्छ, वन्दी यवन, वन्दी फिरङ्गी और वन्दी राजेन्द्र थे। अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण जन थे!

एक ही बार में मदमत्त गजराज का शुंड काटकर गिरा देनेवाला देवगढ़ का राजकुमार था।

महाराणा का छोटा भाई सूरजमल था। यही प्रणवीर देवलिया—प्रतापगढ के भावी शासकों का पूर्वज, 'महाप्रतापी सूर्यमल्ल था। यह अकेला ही एक सहस्र सूरमाओं को भगा देता था। उनकी चलती तलवारों के बीच से अपने घोड़े को दौड़ाता निकल सकता था। यह धीर, वीर, गम्भीर, संयमी और चरित्रवान् था। मेवाड़ की सतत्

रक्षा और उसके निमित्त अपने प्राणों का विसर्जन ही, इसका स्वप्न था। व्याघ्र की सवारी करनेवाला इसका कुल-दीपक—बाघ रावत भी था, जो बाद में 'रावत बाघसिंह' के नाम से इतिहासों में अमर हो गया।

बाघसिंह की शक्ति से आतंकित म्लेच्छों के दल-बादल लड़ने से पहले ही पलायन का पंथ पकड़ते थे।

मेवाड़ की सेना के 'हरावल' में रहने का महान् अधिकारी सलुम्बर का महेन्द्र था। वह अर्जुन-सा वीर और कर्ण-सा दानी था। उसका दान म्लेच्छों को भी प्रभावित कर चुका था।

झालाओं का पूर्वज रामसिंह झाला था। वह अपने त्याग के लिए प्रसिद्ध था। महाबली तेजसिंह था। प्रचण्ड धनुर्धर धर्मसिंह था। तलवार का धनी अक्षयसिंह था।

सुन्दरियों का सरस उपासक परन्तु समरांगणों का सरल पुजारी प्रतापसिंह था। एक हाथ में यवन-प्रिया की पाती और दूसरे में दुधारी तलवार लेकर जूझने वाला केसरीसिंह था। शब्दवेधी बाण चलाने में निपुण गजेन्द्रसिंह था। जिसकी भुजाएँ विशाल थीं और हाथों की उँगलियाँ घुटनों से नीचे पहुँचती थीं। वह दस-हाथ लम्बा भाला चलाकर, शोणित-खप्पर भर-भर कर, चण्डी को रिझाने में तल्लीन रहनेवाला दुर्गासिंह भालावत था।

केसरिया बाना पहनकर अनेकबार म्लेच्छ-दलों को कमल-पत्र की तरह चीर देने वाला चामुण्डराय था।

अपनी विविध सुगन्धियों से शत्रुसेना के गयन्द और अश्वों को भ्रमित कर देने वाला सुगन्धपति माणिकचन्द्र गांधी था।

इनके अतिरिक्त, भीमसिंह, वीरसिंह, पहाड़सिंह, भुजबलीसिंह, विक्रमसिंह, सूर्यसिंह, रूपसिंह, अमरसिंह, रामसिंह, रघुराजसिंह, तेवरसिंह और नरवरसिंह-जैसे सेनानायक और दुर्गपाल थे। राजपूतों की सभी शाखाओं, उपशाखाओं और उपजातियों के नेता, अगुआ और नायक थे।

चौहानों का विख्यात वीर चरणसिंह था। राठौरों का राजदंड-

युक्षक-रणवीरसिंह था। कछवाहों का व्यूह-विशारद सुरजनसिंह था। हाड़ाओं का हठी हिम्मतसिंह था। परमारों का प्रखरसिंह था।

सबको, महाराजकुमार मेदिनीराय ने एक-एककर देखा। ज्यों-ज्यों देखता गया, उसका मन प्रसन्न हुआ, चेहरा चमकने लगा और भुजाएँ फड़कने लगीं, किन्तु एक कोने में एक तरुण को देखकर उसकी आँखें वहीं टिकी रह गईं। अनिमेष दृष्टि से उसने उस वीर वेशधारी को देखा।

तभी राणा ने आदेश दिया—"महामंत्रीजी, कल हमने जिन कविराज को मिलने का समय दिया था, उन्हें अवसर दिया जाए। तत्पश्चात् राजकार्य प्रारम्भ हो।"

"जो आज्ञा अन्नदाता!" कहकर, महामंत्री ने कांठल-निवासी कविराजा को बुलाया। कविराजा के स्वागत के लिए, स्वयं महाराणा अपने सिंहासन से उठ खड़े हुए। तुरन्त सर्व सामन्त, मंत्री और शासक-वर्ग खड़ा हो गया। इस अनपेक्षित, अपूर्व सत्कार से कवि का मन प्रसन्न हुआ और अपने में मस्त, वह गर्जनमय स्वर से कवित्त सुनाने लगा।

सुनकर शान्त सभा, दरबार अनायास पुकार उठा—"साधु! साधु!! धन्य! धन्य!! वाह! वाह!!"

मेदिनीराय भी तन्मयतापूर्वक सुन रहा था। उसका रोम-रोम हिंदू-सूर्य महाराणा की कीर्ति-कथा, सुनकर प्रमत्त था।

महाराणा सुनकर प्रसन्न हुए। तनिक मुसकरा कर उन्होंने महामंत्री की ओर देखा—"कोटि मुद्रा—पसाव और पैरों में पहनने को सोना, राजकीय सम्मान।"

इस पर कविराज ने आशीर्वाद के साथ दानवीर सम्राट् को दोहे में धन्यवाद दिया।

इसी समय एक वीर सैनिक दरबार में उपस्थित हुआ और आज्ञा पाकर उसने अपने पास के राजकीय-पत्र सम्राट् की सेवा में प्रस्तुत किए।

रक्षा और उसके निमित्त अपने प्राणों का विसर्जन ही, इसका स्वप्न था। व्याघ्र की सवारी करनेवाला इसका कुल-दीपक—बाघ रावत भी था, जो बाद में 'रावत बाघसिंह' के नाम से इतिहासों में अमर हो गया।

बाघसिंह की शक्ति से आतंकित म्लेच्छों के दल-बादल लड़ने से पहले ही पलायन का पंथ पकड़ते थे।

मेवाड़ की सेना के 'हरावल' में रहने का महान् अधिकारी सलुम्बर का महेन्द्र था। वह अर्जुन-सा वीर और कर्ण-सा दानी था। उसका दान म्लेच्छों को भी प्रभावित कर चुका था।

झालाओं का पूर्वज रामसिंह झाला था। वह अपने त्याग के लिए प्रसिद्ध था। महाबली तेजसिंह था। प्रचण्ड धर्नुधर धर्मसिंह था। तलवार का धनी अक्षयसिंह था।

सुन्दरियों का सरस उपासक परन्तु समरांगणों का सरल पुजारी प्रतापसिंह था। एक हाथ में यवन-प्रिया की पाती और दूसरे में दुधारी तलवार लेकर जूझने वाला केसरीसिंह था। शब्दवेधी बाण चलाने में निपुण गजेन्द्रसिंह था। जिसकी भुजाएँ विशाल थीं और हाथों की उँगलियाँ घुटनों से नीचे पहुँचती थीं। वह दस-हाथ लम्बा भाला चलाकर, शोणित-खप्पर भर-भर कर, चण्डी को रिझाने में तल्लीन रहनेवाला दुर्गासिंह भालावत था।

केसरिया बाना पहनकर अनेकबार म्लेच्छ-दलों को कमल-पत्र की तरह चीर देने वाला चामुण्डराय था।

अपनी विविध सुगन्धियों से शत्रुसेना के गयन्द और अश्वों को भ्रमित कर देने वाला सुगन्धपति माणिकचन्द्र गांधी था।

इनके अतिरिक्त, भीमसिंह, वीरसिंह, पहाड़सिंह, भुजबलीसिंह, विक्रमसिंह, सूर्यसिंह, रूपसिंह, अमरसिंह, रामसिंह, रघुराजसिंह, तेवरसिंह और नरवरसिंह-जैसे सेनानायक और दुर्गपाल थे। राजपूतों की सभी शाखाओं, उपशाखाओं और उपजातियों के नेता, अगुआ और नायक थे।

चौहानों का विख्यात वीर चरणशिह था। राठौरों का राजदंड-

रक्षक-रणवीरसिंह था। कछवाहों का व्यूह-विशारद सुरजनसिंह था। हाड़ाओं का हठी हिम्मतसिंह था। परमारों का प्रखरसिंह था।

सबको, महाराजकुमार मेदिनीराय ने एक-एककर देखा। ज्यों-ज्यों देखता गया, उसका मन प्रसन्न हुआ, चेहरा चमकने लगा और भुजाएँ फड़कने लगी, किन्तु एक कोने में एक तरुण को देखकर उसकी आँखें वहीं टिकी रह गईं। अनिमेष दृष्टि से उसने उस वीर वेशधारी को देखा।

तभी राणा ने आदेश दिया—"महामंत्रीजी, कल हमने जिन कविराज को मिलने का समय दिया था, उन्हें अवसर दिया जाए। तत्पश्चात् राजकार्य प्रारम्भ हो।"

"जो आज्ञा अन्नदाता!" कहकर, महामंत्री ने कांठल-निवासी कविराजा को बुलाया। कविराजा के स्वागत के लिए, स्वयं महाराणा अपने सिंहासन से उठ खड़े हुए। तुरन्त सर्व सामन्त, मंत्री और शासक-वर्ग खड़ा हो गया। इस अनपेक्षित, अपूर्व सत्कार से कवि का मन प्रसन्न हुआ और अपने में मस्त, वह गर्जनमय स्वर से कवित्त सुनाने लगा।

सुनकर शान्त सभा, दरबार अनायास पुकार उठा—"साधु! साधु!! धन्य! धन्य!! वाह! वाह!!"

मेदिनीराय भी तन्मयतापूर्वक सुन रहा था। उसका रोम-रोम हिंदू-सूर्य महाराणा की कीर्ति-कथा, सुनकर प्रसन्न था।

महाराणा सुनकर प्रसन्न हुए। तनिक मुसकरा कर उन्होंने महामंत्री की ओर देखा—"कोटि मुद्रा—पसाव और पैरों में पहनने को सोना, राजकीय सम्मान।"

इस पर कविराज ने आशीर्वाद के साथ दानवीर सम्राट् को दोहे में धन्यवाद दिया।

इसी समय एक वीर सैनिक दरबार मे उपस्थित हुआ और आज्ञा पाकर उसने अपने पास के राजकीय-पत्र सम्राट् की सेवा में प्रस्तुत किए।

महामन्त्री ने उन पत्रों को पढ़कर निवेदन किया—"समाचार महत्त्वपूर्ण है, और नहीं भी है। मध्यएशिया में म्लेच्छों के नायक आर्यावर्त पर आक्रमण करने के सपने देख रहे हैं। अन्नदाता, मुग़ल आततायियों की स्मरण-शक्ति क्षीण है, सम्भवतया वे उस दिन को भूल गये हैं, जब उनके पूर्वजों ने पलायन और पराजय का प्रश्रय लिया था। आज भी वे कबरों में गड़े-पड़े कराह रहे हैं।"

महाराणा रायमल्ल क्रोध में आकर सिंहासन से उठ खड़े हुए। भादों के मेघ भरे अम्बर में प्रलय के आवेग को भुजाओं में भरकर कड़कड़ाने वाली बिजली की तरह, अपनी तलवार निकालकर गर्जना की—

"जब तक आर्यावर्त की परम पवित्र धरती पर भगवान् एकलिंग के चाकर रायमल्ल की भुजाओं में रक्त की एक भी बूंद बाकी है, तब तक कोई भरतभूमि की ओर आँख उठाकर भी न देख सकेगा। और यदि महाकाल एकलिंग की यही मर्ज़ी है कि वे म्लेच्छों के मुण्डों से अपना सिंगार करें तो मेवाड़ माता की शपथ, आज से राणा की तलवार कभी विश्राम नहीं लेगी!"

"अन्नदाता, अपराध क्षमा हो।" सलुम्बर का नौजवान महा-सामन्त खड़ा हुआ—

"एक साधारण शृगाल की तैयारी का मोल ही क्या? जब तक सलुम्बर के पारिवारिक अपनी माताओं का दूध पीते रहेंगे, महाकाल एकलिंग की धरती म्लेच्छों से मुक्त रहेगी। मुझे अपनी जननी के दूध की शपथ, यदि मैं आततायी को अपने ही प्रदेश में दफ़न न कर दूँ।"

"शान्ति, शान्ति!" परामर्शदात्रि-मण्डली के अति वृद्ध पण्डितराज शंकरशास्त्री बोले।

सब लोग शान्त हो गए। किन्तु पण्डितराज के आदेश को भी अनसुना कर, रावत सूर्यमल्ल के समीप बैठा हुआ तरुण बाघ रावत उठकर खड़ा हो गया—

"अन्नदाता, मैं मध्यएशिया के म्लेच्छराज से लड़ने जाऊँगा।"

"मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तात !" महाराणा ने हँसकर कहा—"तुम अभी बहुत छोटे हो।"

"अन्नदाता, क्षमा करें।" बाघरावत का उत्साह अङ्गों में समा न रहा था—"पृथ्वीपति, भगवान् एकलिंग के महारथी महाराणा बाप्पा रावल ने जब मध्यएशिया और खुरासान को पहली बार सभ्यता प्रदान की थी, तब वे केवल बारह वर्ष के थे।"

बाप्पा रावल का नाम सुनकर हर्षातिरेक से वृद्धजनों की आँखें भर आईं और युवकों के चेहरे गम्भीर हो गए।

बाघ रावत बोला—

"अन्नदाता! महाभारत के वीर अभिमन्यु कितने छोटे थे! चण्ड चौहान-कुल-प्रचण्ड पृथ्वीराज महाराज ने शोणित की प्यासी इस पविता भूमि को गजनी के म्लेच्छों का उष्ण रक्त पिलाया कर सोलह बार तृप्ति दी, तब वे प्रौढ़ या वृद्ध नहीं थे। बालयुवा ही थे! महाराजाधिराज, हमारे बड़े दादाजी राणा कुम्भा ने मालवा के सूबेदार मुहम्मदशाह प्रथम को हराकर छह मास तक, इस पवित्र दुर्गराज चित्तौड़गढ़ में बन्दी बनाकर रखा, और अन्त में दया का दान देकर छोड़ दिया, तब महाराणा कुम्भा ग्यारह वर्ष के थे! कृपानिधान, प्रातःस्मरणीय महाराणा मोकल ने जब एक ही बाण से सात शिलाएँ बेध दी थीं, तब वे नौ वर्ष के थे। स्वयं श्रीमान् ने अपनी देवदेही पर घावों का सत्कार कर दिल्ली के शाह को मेवाड़ की शरण में आने को बाध्य और लालायित कर दिया और अन्त में अत्यन्त उदारतापूर्वक उसका राज्य लौटा दिया था। तब···"

महाराणा मुसकराए। बाघ रावत भी मुसकरा दिया—"मैं अविनीत हूँ, तो क्षमासिंधु! आपकी क्षमा ही मेरा दण्ड है!

महामन्त्री ने कहा—

"सेनानायक तेवर म्लेच्छ-प्रदेश में रह चुके हैं। अतः उन्हें प्राथमिक कार्यवाही के लिए भेजा जाए।"

"अवश्य।" महाराजा ने स्वीकृति दी।

तदनन्तर राजनर्तकी मागंवी अपने नृत्य का प्रदर्शन करने लगी। उसके सौरभ-सम्पन्न सौन्दर्य और रसवंत उल्लासमय लास-नर्तन को देख-देखकर दिन-रात भालों, वर्छियों, कटारों, शमशीरों, तलवारों और तीरों के वीच में रहने वाले वीरों के नयन-मन आनन्द से खिल उठे। सुमन्द संगीत, सुमन्द गायन, सुमन्द वादन और सुमन्द नर्तन ने वातावरण को अपनी कला से खिला दिया।

नृत्य और संगीत के विसर्जन पर राज-परिषद् के सदस्य कुछ कहना चाहते थे, अतः उन्हें अवसर दिया गया। सव ने एक स्वर से आन्तरिक एकता, प्रजा को सुख-सन्तोष, सेना में अनुशासन, वफादारी और साधन-संचयन पर जोर दिया।

वृद्ध पंडितराज शंकरशास्त्री ने संगठन और राष्ट्रीय एकता की वृद्धि करने और फूट फैलाने वाले तत्त्वों का अन्त करने का आग्रह किया।

पंडितराज शंकरशास्त्री ने अत्यन्त भावार्द्र वाणी में कहा—

"सम्राट् एवं सभ्यजन ! भारत का इतिहास फूट के दुष्परिणाम और सामाजिक अनैकता एवं व्यक्ति की स्वतन्त्रता की ओट में व्यक्ति की स्वार्थपरता और श्रेष्ठियों के अभिशोषण के दुष्परिणाम आज भी भोग रहा है। आप सर्वजन जानते हैं कि कन्नौज का जयचन्द राठौर हमारे समाज में आज भी एक-न-एक लोभी और कुटिल व्यक्ति के रूप में जीवित है। देश के इतिहास में, अतीत और वर्तमान में इन विभीषणों की कमी नहीं है। कन्नौज के जयचन्द राठौर, काश्मीर के राजा चक्रदेव, मालवा के वर्मा, गुजरात के माधव, वंग के वेणुपाल, देवगिरि के देवपाल, कर्नाटक के वल्लभदेव, मदुरा के सुन्दरपण्ड्य, जालौर के महाराजा सांतल और जैसलमेर के मोकल भट्टी जैसे कायर देशद्रोहियों और कुलकलंक कपूतों ने इस स्वर्ग को नरक बनाने का प्रयास किया है—चाँदी के चंद चमकदार टुकड़ों के लोभ में पड़कर माता का चीर वेचा है। अतः मैं निवेदन करूँगा कि पार्षद वैरी के चारोंओर मित्र के रूप में विश्वासघातियों से सावधान रहें।..."

उस पल राज-दरबार का भव्य भवन बाहर के कोलाहल से भर गया। बाहर राज-पथ पर अति विकट एक स्वर जैसे चीत्कार कर रहा था—

"टूटेगा···टूटेगा! सोमनाथ फिर टूटेगा! महाकाल के मन्दिर पर फिर प्रहार होगा। गौतमनाथ का भग्न लिंग इस सत्य का साक्षी है कि राजपूत ने अपनी माँ के दूध को भुला दिया है। राजपूत सोता है।···जागो, जागो, आर्य सन्तानो, मैं तुम्हें जगाने आया हूँ, जागो, जागो, यह जानकर कि म्लेच्छों की दासी होने से विधवा होना अच्छा है···जागो···जागो तुर्कों का गुलाम होने से रणभूमि में सोए रहना अच्छा है। 'सोमनाथ के मन्दिर फिर टूटेंगे। गौतमनाथ के महालिंग पर पुनः प्रहार होगा।"

राजसभा में सन्नाटा छागया। स्वर अब भी आ रहा था —

"तुम मुझे मुंड दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा! तुम मुझे रक्त दो, मैं तुम्हें मुक्ति दूँगा। जागो, जागो, म्लेच्छ-यवन आ रहे हैं। घरों में आग लगाने के लिए, सतियों का अपमान करने के लिए, फसलों को जलाने के लिए, गौ-माता का भक्षण करने के लिए, म्लेच्छ आ रहे हैं। टूटेगा, सोमनाथ फिर टूटेगा। वीर एक बार मरता है, कायर रोज-रोज मरता है। जागो, जागो मैं भैरव के प्याले की भंग लाया हूँ। अपनी बेटियों के लिए जौहर का आग लाया हूँ। मैं केसरिया रंग लाया हूँ। जागो, जागो, मैं जलता हुआ अंग लाया हूँ।" है कोई चित्तौड़ में माई का लाल जो एकलिंग का वरदान लेना चाहता है? मृत्यु सुन्दरी का वरण करना चाहता है? जागो, जागो, कि फिर भगवान् भूतनाथ का डमरू बजे। चण्डी फाग खेले। जागो कि भवानी का कोप जागे। फिर से महारुद्र हुंकार भरे और भू-मण्डल में भूचाल आए!····", उद्घोष करता कापालिक सभा-भवन में चला आया। किन्तु उसके स्वर में तनिक भी परिवर्तन नहीं आया—

"जागो, जागो अन्यथा मैं कहता हूँ"—और कापालिक ने अपना चिमटा ऊँचा उठाया—"सोमनाथ फिर टूटेगा, गौतमनाथ फिर टूटेगा और एकलिंग भी टूटेगा···"

: २ :

एक ही अवधि में शरद के दो भिन्न रूप थे।

पहले जब वह आई थी, देह तन्वंगी थी और दृष्टि में कौतुहल था! जैसे, नवपरिणीता, नवोढ़ा थी! कदम धीमे उठ रहे थे कि गति की दिशा और गन्तव्य निश्चित था!

इसी अवधि में ऋतु-परिवर्तन यों हुआ कि न हुआ! जैसे नवोढ़ा वह सिमन्तनी बनी है और लौटकर अब नैहर जानेवाली है! क्षितिजों के ओर से छोर तक फैले उसके लोचनों में अनन्त तृप्ति का आस्वाद भरा है और प्रथम गर्भ के भार से बोझिल पलकें उनींदी होकर, अर्द्ध मुकुलित प्रसूनपट-सी प्रतीत होती हैं!

शरद सुहागन का अब अङ्ग-अङ्ग भरा है—

दृष्टि का कौतुहल अब अनुभूति और परिचय का भाव बन गया है! नवोढ़ा बाला तरुणी बन गई है और उसकी चपलता हार्दिक आह्लाद बन गई है। आह्लाद यह सेज की ऊष्मा बन गया है और धीमे-धीमे हृदय के रस में सिमट कर पयोधरों का अमृतबिंदु बनता जा रहा है!

लेकिन अजानी दिशाओं से, इस अमृत को झपटने के लिए हिंसा और लोभ के दानव अपने पंजे फैलाए चले आ रहे हैं!

युद्ध का रक्त-रंजित, खौफनाक, खूनी वातावरण !

"युद्ध, युद्ध और युद्ध !" नगरश्रेष्ठि ने सप्ततलप्रासाद में प्रविष्ट होते हुए, अपनी पत्नी मीनाक्षी की ओर देखते हुए कहा—

"कुछ सुना तुमने ?" उसने उतावले पैरों सेठानी की ओर बढ़ते हुए, अपनी बात को आगे बढ़ाया—"पारसिक देश और गांधार से, आज कुछ व्यापारी उज्जयिनी आए हैं। सूखे मेवे और फलों के अग्रिम सौदे पर वे जोर दे रहे हैं।"

सुनकर सेठानी मीनाक्षीदेवी ने श्रेष्ठि की ओर अपनी बड़ी-बड़ी पलकें उठाईं।

वल्लभी सेठानी के पैरों पर महावर लगा रही थी। आज मीनाक्षीदेवी ने फूलों के गजरों से सिंगार किया था। उसने अपने सप्तांगों में परागवान् पुष्प धारण किये थे। गोल-गोल सुचिक्कन जूड़े वारुणी की लहर-सी वेणियों में, गोरे-गोरे कानों में, सुघर हाथों में *ललित लक में, खुली, धुली बाँहों में और कमनीय कलाइयों में !* इससे, उसका सौन्दर्य सौगुना बढ़ गया था।

एक तो केरल के सर्वसत्तासम्पन्न परिवार की पुत्री, दूसरे महामालव की महानगरी उज्जयिनी के नगरश्रेष्ठि की धर्मपत्नी कि जिसके श्वसुरालय के अनन्त वैभव की धूम, न केवल सारे मालवा, में वरन् समस्त गुजरात और खानदेश में, मची हुई थी। तीसरे मालवा और मेदपाट राज-परिवारों से निकट सम्पर्क और राजसी-रनिवासों में अरोक प्रवेश। चौथे आबूजी और ऋषभदेव के जैन-सन्तों और नेताओं के धर्मक्षेत्र में पैठ—यह पैठ श्रेष्ठि के धर्म-बल के कारण थी, अथवा धन-बल के—नहीं कहा जा सकता ! फिर भी धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति और प्रभावशाला के फलस्वरूप देह और आत्मा के सुख-भोग, उन्हें उपलब्ध थे। और गजगामिनी मीनाक्षीदेवी आज गंधित गजरों के बीच में लाल फूल की तरह खिल रही थी। उसकी सज्जा देख कर श्रेष्ठि अपनी बात भूल गया !

मीनाक्षीदेवी ने अपने घने-घने ऐड़ीचुम्बी कुन्तलों के जूड़े में

कुन्द-कलियों के गजरे सजाए थे। उसकी गुर्जर दासी निपुणा
कला में सर्वथा निपुण थी। पहले वह गुजरात के सुलतान की
स बेगम जहाँनारा की केशराशि के शृंगार के लिए नियुक्त थी।
र कई इतिहासकारों और तवारीखनवीसों ने गुजराती बेगम
हाँनारा की काली-काली जुल्फों के लम्बे-लम्बे बयान लिखे हैं। कहते
हैं, गुजरात के सुलतान ने एक दिन नौरोज के बाज़ार में चन्दनवन की
बुलबुली चिड़िया-सी चौदह वर्षीया जहाँनारा को देखा था। और
सुलतान की पहली नज़र जहाँनारा के काकुलों पर गई थी, फिर तो
नज़र वह वहाँ से लौट कर नहीं आई! फिर आई—अहमदाबाद के
शाही हरम में जहाँनारा--सुलतान की चहेत बेग़म बनकर! इसके
बाद 'बेग़म के बाल' तवारीखों के पन्नों तक फैलगए! निपुणा जहाँनारा
बेग़म के केशों में मोती गूँथती थी। उसने इस तरह जहाँनारा का
सिंगार किया और इतनी तरह किया, कि बादशाह बालों की तारीफ़
भूलकर, उन्हें मोतियों से सजाने वाले खूबसूरत हाथों की तारीफ करने
लगा। इससे जहाँनारा के दिल में पत्ता खटका और उसने निपुणा को
चुपचाप निकाल दिया? निपुणा तो जहाँनारा बेगम के मोती महल से
चली आई लेकिन बेगम के बाल, कोई बाँदी फिर वैसे न बना सकी,
जैसे, निपुणा बनाती थी।

भाग्य की लीक पर चलती-चलती निपुणा अवन्ती में आ पहुँची
और उसकी कला समय पाकर, उज्जयिनी की श्रेष्ठि-कन्या का सिंगा
बन गई। निपुणा की कला के योग से (बेटी) माधुरी का निख
हुआ रूप देखकर (माँ) मीनाक्षीदेवी ने निपुणा को अपनी सेवा
बुला लिया। यहाँ, यद्यपि निपुणा तन-मन के श्रम से सेठानी का सिं
करती थी, फिर भी सेठानी यही कहती रहती थी - "निपू, तूने
उतने अच्छे नहीं सजाए, जितने माधुरीदेवी के!"

उत्तर में निपुणा आखिर कैसे कह देती कि माधुरीदेवी खि
हुआ चन्द्रमा है और मीनाक्षीदेवी ढलती हुई चाँदनी रात है!

सेठानी ने जब श्रेष्ठि की बात पर ध्यान न दिया तो, श्रेष्ठि

बात बड़बड़ाता हुआ अपनी प्रथम पत्नी के पुत्र रत्नचन्द्र की पत्नी दीपावली के कक्ष की ओर गया।

रत्नचन्द्र की माता चन्द्रावली का देहान्त हो चुका था। उसके परलोक-गमन पर ही श्रेष्ठि ने मीनाक्षीदेवी से विवाह किया था! रत्नचन्द्र अपना नौका-दल लेकर मलयदेश गया था। जिस साल उसका विवाह हुआ था, उसी साल सागर-यात्रा का अनिवार्य कार्यक्रम उसे अपने हाथ में लेना पडा। नवविवाहिता बाला पत्नी को सूनी सेज पर अकेली बिलखती छोड़कर, रत्नचन्द्र उत्तुंग मस्तूलधारी अपने जहाजों पर सवार होकर, पूर्व दिशा की ओर अभियान कर चुका था!

दीपावली अरुणोदय (आज का अरनोद) के धनपति, नगर निगम-नेता नाहरमल्ल की पौत्री थी। दूज शशि की पहली किरण-सा उसका दर्शन था! किन्तु दीपावली क्षीण शशिकिरण-सी नहीं थी, शान्त-शीतल! पतली किरण-सी थी। अग्निधारवत् थी। चपल और उद्दाम था उसका देह-वैभव! मुँहजोर अश्व के समान, उसका अविनीत यौवन, वल्गाओं की सी-सी शृंखलाओं को एक झटके में तोड़कर धरती–आकाश को खूंद रहा था। चार-चार साल से उसकी सेज पर वियोग की नागिन बसेरा किए बैठी थी। चार-चार साल से यौवन का दुर्दम्य तुरङ्ग कामनाओं और कल्पनाओं के मैदानों को बेतहाशा पार कर रहा था और उसे थाम कर थपथपाकर, उस पर आरोहण करने वाला नरनायक कहीं—दूर था! चार-चार साल से कंचुकी के बन्द खुलकर बँध थे और बँधे कर खुले रह गए थे, पर वातायन में आते चन्द्र के साथ, रत्नचन्द्र नहीं आया!

रत्नचन्द्र नहीं आया और दीपावली ज्योतिषी-ब्रह्मनों से अपना भाग्य पूछने लगी। हस्तरेखाएँ दिखाने लगी और बाईं फड़कने का शकुन पूछने के लिए दूर-दूर तक दासियों को भेजने लगी!

और सप्ततल प्रासाद के प्रांगण में, जहाँ आए दिन हिमालय की जड़ी-बूटी बेचनेवाले आते, मदारी और नट आते! प्रस्तर जाली की

ओट में बैठी अतृप्त दीपावली नटों और जादूगरों के सम्पर्क में आई, अन्धविश्वास ने अपनी काली छाया फैलाई और धीरे-धीरे दीपावली पीरों और फकीरों के मजारों तक परिचारिकाओं को भेजने लगी।

—ऐसे वातावरण में दीपा का पैर फिसल जाए तो विस्मय क्या? रसभरी शहतूत डाली पर तड़क जाए तो शहतूत का दोष कहाँ? दोष तो रस के अनन्त प्रवाह और आवेश का है, अथवा है उस माली को जो चुनने के लिए आज तक नहीं आया!

माधुरी अपनी भाभीधन दीपावली से बहुत छोटी थी। दोनों सुन्दर थीं। एक दूसरी का उपमान थीं, लेकिन फर्क इतना ही था और काफी था कि भाभी की तरुणाई भ्रष्ट हो चुकी थी और चेहरा आसव की खुमारियों के काले डोरों से कहीं-कहीं साँवला पड़ गया था और लुक-छिपकर अन्धगृहों में, मन्दिरों में, खास बाजारों में, दूतावासों में और सहेलियों के आवासों में किए गए अतिचार के फलस्वरूप झुर्रियों से नहीं—काली रेखाओं और झाँइयों से भर गया था! फिर भी आँख में ऐसा और इतना नशा था कि दर्शक पहले ही पल में मतवाला हो जाता और दीपा को इन झाँइयों और काली डोरियों पर उसकी नज़र तक न जाती!

इस तरह, दीपा खाली कलशी थी जो भर जाने को आकुल थी। माधुरी भरी हुई कलशी थी, जिसका बूँद एक न छलका था! दीपा की तृप्ति बाहर थी, माधुरी की तृप्ति उसके अपने भीतर थी! दीपा देह की पुजारिन थी। माधुरी हृदय और आत्मा की आराधिका थी। दीपा शैव थी! माधुरी वैष्णव थी।

माधुरी राधामाधव की युगलमूर्त्ति की पूजा किया करती। दीपा देवाधिदेव महादेव के ज्योतिर्लिंग के अभिषेक के लिए ब्राह्मणों को नित्य नए निमन्त्रण देती! फिर भी भाभीधन और ननदधन दोनों सहेलियाँ थीं, पहेलियाँ थीं। एक-एक इकाई थीं। स्वयं प्रश्न थीं और स्वयं उत्तर थीं। भिन्न ध्रुव थीं, अभिन्न अन्तरा थीं! जीवन के स-र-ग-म की प-द-नि-सा थीं! एक बँधी हुई वाह थी। एक खुली हुई आह थी। एक राख थी। एक चिता थी।

श्रेष्ठि ने अपनी कुलवधू दीपावली के नीलरंगी मिलन-गृह में प्रविष्ट होने के पूर्व, परिचारिका को पुकारा--"नीलनयना, अपनी स्वामिनी से कहो, श्रेष्ठि आये हैं।"

नीलनयना दौड़कर अपनी मालकिन के पास गई और उसे बुलाकर बाहर ले आयी। दीपा जब बाहर आई, एक हाथ से अपने अस्त-व्यस्त वेश को सहेज रही थी। उसकी कंचुकी के बन्धन बिखरे थे। और दो वेणियाँ अपनी गुम्फनमाला से मुक्त हो कर कपोल-प्रदेश तक झुक आई थी, सो दीपा वेग के बाद, उन्हें कपोलो पर छा जाने से रोक कर, पीछे लौटा रही थी। श्रेष्ठि ने अपनी वधू को देखते ही पुनः वही पहली बात दुहराई--

"युद्ध, युद्ध और युद्ध ! देवि, दीपा आज गांधार, मिराज और दूसरी विलायतो से व्यापारी आए है, कहते थे फिर बहुत बड़ा जंग होने वाला है। इधर कापालिक युद्ध की चिनगारी जलाकर चला गया है।"

"श्रेष्ठि ! यह चिनगारी अब बुझ न सकेगी। जनता गौतमेश्वर के महालिंग पर किए गए एक प्रहार का बदला सौ-सौ प्रहारों में लेगी। मैंने अरुणोदय में अपने मातुल-गृह मे उन्हे एकत्र होते देखा है। और देखा है कि म्लेच्छराज के उस एक प्रहार की चोट जन-मानस पर लगी है और बहुत गहरी लगी है। इसलिए, आज की घडी मे युद्ध ही निदान है।"

"लेकिन देवि, शांतिसागरजी महाराज कहते थे कि युद्ध मे हिंसा होती है और हिंसा निगंठो के सिद्धान्तो के विरुद्ध है।"

"श्रेष्ठिवर, शांतिसागरजी की हिंसा और अहिंसा अवसरविशेष पर यदि हमारे सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सिद्धान्तों के अनुकूल नही हो, तो वह सहज त्याज्य है। यदि युद्ध से हमारे व्यापार को लाखों का लाभ पहुँचता है तो उसमे होने वाले हिंसा-अहिंसा से हमारा क्या प्रयोजन ? सफल वणिक वही है जिसकी दृष्टि लाभ पर लगी रहे और शुभ-अशुभ और शिव-अशिव की ओर देखे तक नही, फिर

भी, यदि इससे कुछ अधर्म होता है और शांतिसागरजी का मन म्लान होता है, तो कोटि-कोटि की लाभ-राशि में-से कुछ द्रव्य जिनालयों को दान में भी दिया जा सकता है। इस प्रकार तथाकथित अधर्म की राह भी रुक जाएगी और लोक-दृष्टि और लोक-मानस में वह बढ़ न सकेगा।"

अपनी पुत्र-वधू की ऐसी विलक्षण व्यापारिक वृत्ति देखकर अवन्तिका का नगरश्रेष्ठि चपल चपला-सा चकित रह गया। उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि वाणिज्य के चक्रव्यूह में भी दीपावली की, इस भाँति सहज, सम्भव पैठ है। युद्ध के कठिन काल में कमाई के अनन्य अवसर की प्राप्ति लाभ-राशि की दुरूहता पल भर में उसके मेधावी मस्तिष्क में सहज प्रवेश पा गई, किन्तु धर्मभीरु मन ने साथ न दिया—इसलिए उसके स्वार्थ ने चाहा कि वह स्वयं तो चुप रहे और दीपा ही इस बारे में कुछ कहे और यों, इस समय वह पाप के प्रभाव से बच जाए और अहिंसा का आराधक बना रहे।

दीपा बोली—"आज नहीं कल, कल नहीं साल भर बाद, पाँच-पन्द्रह वर्ष पश्चात् परन्तु म्लेच्छ आततायियों के विरुद्ध भयंकर संगर जागेगा। और प्रत्येक संग्राम वणिक-वृत्ति के कञ्चन की कमाई और लाभ की उपलब्धि का एक अपूर्व अवसर देता है, इसलिए कि वणिक उभय पक्ष को युद्धोपयोगी सामग्री बेचता रहे और दोनों ओर का स्वर्ण उसके भण्डार में संग्रहीत होता रहे। हम वह समस्त सामग्री लोदियों और मुग़लों को बेच देंगे जिसे राजपूत खरीद न सकेंगे। और जिसे विदेशी क्रय न कर पायेंगे, उसे राजपूतों को अथवा कापालिक के 'मुक्ति-मण्डल' को बेच देंगे। हमारा काम अपने लाभ और लोभ की गति को देखना है न कि राष्ट्र या देश की चिन्ता में दुबले होना। इस चिन्ता-चिता पर चढ़ने के लिए ब्रह्मन और राजपूत हैं ही। हम युद्ध में भाग न लेने की वृत्ति रखते हुए भी, अहिंसा का पालन करते हुए भी, राष्ट्र के हित के लिए लड़े जाने वाले युद्ध से विमुख नहीं हो सकते, वरना जनमेदिनी हमारा पत्ता-पत्ता उड़ा देगी। श्रेष्ठि, बौद्धों का द्रोह याद है न! उनकी अहिंसा म्लेच्छ आक्रान्ताओं का प्रतिरोध न कर

सकी। विलायतों में जहाँ-जहाँ इस्लाम आया, पहले बौद्ध बसते थे, विदेशी आक्रमणकारी नंगी तलवार लेकर जब चढ़ आया, इन इन देशों के बौद्धों ने अहिंसा का फतवा दिया, परिणाम जो प्रकट हुआ आप से छिपा नहीं है। सारे बौद्ध धर्म-भ्रष्ट हुए और इस्लाम की तलवार ने उन्हें म्लेच्छ बनाने पर मजबूर किया, उन्हें मृत्यु या इस्लाम में-से एक अंगीकार करना पड़ा और क्षमा करें, मैंने आज तक एक भी ऐसा अहिंसापालक नहीं देखा, जिसने अहिंसा की रक्षा के लिए मृत्यु का वरण किया हो! श्रेष्ठि, प्राण सबको प्यारे हैं। प्राणों की रक्षा भी तो अहिंसा है और है धर्म का पालन।"

"हाँ देवि, कहा है : 'प्राण की रक्षा निश्चय ही धर्म-साधन है!' तो तुम्हारा कहना है ? "

'युद्ध अवश्य होना चाहिए। उधर गौतमेश्वरमठ कापालिक को दान, इधर सामग्री का भाव और दर बढ़ाकर उस दान-राशि को वापस खींच लेना—हमारे लिए अहिंसा-धर्म है! हमारे स्वार्थ की हत्या—हिंसा न हो, यही हमारे लिए अहिंसापालन है।"

"तुमने इस नादान वय मे, यह सब कहाँ से सीखा ?"

"इस प्रश्न का उत्तर, मुझसे अधिक अच्छी तरह आप जानते हैं।"

"मैं जानता हूँ, वधूधन क्या कह रही हो ?" श्रेष्ठि ने आनंद में आश्चर्य प्रकट किया!

"सच है! आपकी कार्यावली देख-देख कर मैंने यह-सब सीखा है।"

"तो हमें भावी लोक-संकट से सुरक्षित रहने और उसके भँवर से भी अपने लाभ का फूल निकाल लाने की तैयारी कर लेनी चाहिए। " श्रेष्ठि ने बड़ी चतुराई से वक्रवाणी मे कहा।

"तैयारी! हम कर चुके हैं।"

"हम!"

"जी श्रेष्ठिवर—आप और मैं।"

"मैं तुम्हारा सकेत नहीं समझा कुलवधू।"

"अधिक समय आपका नष्ट न हो, अतः स्पष्ट कहूँ तो क्षमा करेंगे!"

"क्षमा की क्या बात बहू ! तुम इस कुल-परिवार की राज्यलक्ष्मी, भाग्यलक्ष्मी, रूपलक्ष्मी हो !"....

"श्रेष्ठि ! क्या आपने दिल्ली के लोदी सुलतान से समझौता नहीं कर लिया है ? क्या आपने म्लेच्छों और मुग़लों से तय नहीं कर लिया है कि उनके आक्रमण के अवसर पर आप—उज्जयिनी के नगरश्रेष्ठि, युद्ध-सामग्री देकर उनकी सहायता करेंगे ?"

नगरश्रेष्ठि का सिर चकरा गया ! यदि स्थान कोई अन्य होता तो, वह बेहोश हो जाता ! किन्तु अपने ही आवास और रनिवास में उसके धीरज ने उसका साथ न छोड़ा ! पूछा -

"देवि, तुम्हें कैसे ''ज्ञात हुआ ?"

'लोदियों और मुग़लों के जिस प्रतिनिधि से आपका समझौता हुआ है, उससे ।"

"लेकिन वह तो समझौते के बाद तत्काल उज्जियिनी छोड़ चुका था !"

"आपके लिए !" और इतना कहकर उसने ताली बजाई, नीलवसना दासी उपस्थित हुई।

दीपावली बोली—"अतिथि को निजी कक्ष से बुलाओ !" फिर परिचारिका के जाने के पश्चात् दीपा ने अपने श्वसुर से कहा—"क्षमा करें प्रतिनिधि वह, मेरे पुरुषसखा हैं। इस सूने जीवन में मेरा मन उनके सामीप्य से सुख पाता है।"

श्रेष्ठि ने अपनी कुलवधू को देखा। सीना तान कर वह, उत्तुंग प्रतिमावत् खड़ी थी ! अनन्त वासना और अनन्त काम की अनन्त रति-सी!

"श्रेष्ठिभद्र ! सुनकर आप क्षुब्द हैं ?"

"नहीं, नहीं ! देवि, भला, तुम्हारे सुख को देखकर मैं क्यों कर क्षुब्ध हो सकता हूँ। मैं तो प्रसन्न हूँ कि रत्नचन्द्र का अभाव तुम्हारे लिए अभाव न बन सका। आखिर मलयदेश में, रत्नचंद्र भी तो वाली और स्वर्णद्वीप की रसरमणियों के संग से शारीरिक सुख का धर्म-लाभ पाता होगा ! अपनी युवावस्था में, मैं एक बार चीनाम्बर के क्रय के

निमित्त चीन गया था। अपनी यात्रा की अवधि मे ब्रह्मप्रान्तर और चीनदेश की वार-वनिताओं, कुल-कान्ताओं और काम-कन्याओं का संयोग मेरे लिए पर्याप्तरूपेण सुखदायक सिद्ध हुआ था !" और, कहते-कहते श्रेष्ठि यौवनकाल के उन सुख-स्वप्नों की सुखद स्मृति में खो गया !

तभी, खड़ाऊँ की खट्-खट् से उसका ध्यान भंग हुआ। विप्रवेशधारी तिलकवंत एक ब्राह्मण को सामने से आते देख, वह समादर के हेतु उठ खड़ा हुआ। लेकिन वधूधन ने उसे रोक दिया।

तब तक आगन्तुक निकट आ गया था। उसे देखते ही श्रेष्ठि ने पहचान लिया—

"इसलाम खाँ !"

"अस्सलामवालेकुम !"

'वालेकुमस्सलाम ! आप तो बम्हनों के भेष मे बिल्कुल बम्हन लगते हैं !"

"जी, शुक्रिया ! आजकल दीपावली कुवरानी की ओर से देवालयों मे जप-तप चल रहा है।" और इतना कह कर वह खिलखिलाया।

"ये हैं मेरे पुरुप-सखा !" कहकर, दीपा हँसने लगी। इस हँसी से उसकी अति सूक्ष्म प्रावरणा (ओढनी) के नीचे, उसके पुण्य पयोधर हिल-हिल रहे थे !

फिर श्रेष्ठि और ब्राह्मण-वेशी इसलाम खाँ व्यापार और राजनीति के वार्तालाप मे संलग्न हो गए।

दीपा उठ कर वहाँ से, अपने कक्ष की ओर चली ! आगे कुछ बढ़ने पर उसने देखा, उसकी पद-ध्वनि सुनकर, जैसे एक छाया कही ओट मे छिप गई है !

सावधान हो कर वह उसी दिशा में चली

: ३ :

राजो आकर कुटिया के बाहर बैठ गई। दो घड़ी पहले ही उसका मुंह उगते चाँद-सा खिला हुआ था, अब, बुझे हुए दीपक-सा उदास था कुछ ही देर पहले जो राजो बगल में काली कलशी दबाए तितली की तरह उड़ती, हँसती-खेलती, अपनी हमजोली बालाओं से चुहल करती, पनघट की ओर गई थी, वही राजो धीमे-धीमे सिसकती, बोझिल मन और मन-मन भर के पैर लिए घर लौटी। रास्ते भर उसकी सहेली सीता ने उसे बहुत समझाया—

"राजो बहन, उन बड़े घर के कुमारों से लड़कर, तूने ठीक नहीं किया।। कहाँ वे महल में रहने वाले, कहाँ हम धूल में लोटने वाले!"

"सीता, महल हो या कुटिया, भगवान् सबका एक है। सच तो यह है कि उन्हें जिस भगवान् ने जन्म दिया है, उसी ने हमें भी बनाया है।"

"लेकिन राजो, कुमार के पिता राजा हैं और हमारे पिता प्रजा हैं। हम रंक, चमार हैं।"

"चमार हैं तो क्या हुआ? चमार क्या मनुष्य नहीं होते? जिस तरह और, जैसे; राजाओं, सामंतों और श्रेष्ठियों का जन्म होता है, उनमें जवानी और बुढ़ापा आता है, उसी तरह और वैसे ही हम

गोपितों—समाज के सच्चे सेवकों, दासों और शूद्रों का जन्म होता है। सीते, उनके जीवन में भी यौवन के वसंत मुसकराते हैं, प्रौढ़ावस्था का अनुभव जीवन-पथ के कुटिल कण्टकों से सावधान करता है और वृद्ध होने पर जरा-जन्म, रोग-शोक और सन्ताप सताते हैं अथवा संचित विवेक काल के कष्ट को जन्मान्तर के आमोद में बदल देता है।"

"यह ठीक है।"

"फिर ऊँच क्या, नीच क्या ? फिर बड़ा और छोटा, महाजन और शूद्रजन क्या ?"

"ये भेद प्रभु ने नहीं बनाए, क्योंकि प्रभु भेद की रचना नहीं करता, वह विनाश का विधाता नहीं है।"

"यही तो मैं कहना चाहती थी—भेद मानव-निर्मित है। मनुष्य ने ही अपने स्वार्थों के अनुरूप वर्गों की रचना की और अपने ही जैसे दूसरे मनुष्य को छोटा माना, या बड़ा बनाया। प्रभु का पट्टा लेकर कोई नहीं आया, चाहे वह कितना ही शक्तिशाली नरेन्द्र हो या ज्ञानवान् पण्डित।"

"परन्तु राजो, ये लोग—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तो यही कहते हैं : भगवान् ने सबको अपने-अपने भाग्य के अनुसार जन्म दिया है। भाग्य से ही राजा और भाग्य से ही मनुष्य रङ्क बनता है। भाग्य ने ही स्वामी और भाग्य ने ही सेवक बनाया है।"

"जिस प्रकार हम मानव में विद्यमान भेद-प्रभेदों के लिए दोषी नहीं ठहरा सकते, उसी प्रकार भाग्य को भी अपराधी घोषित नहीं कर सकते।"

"मेरा अनुमान है राजो भाग्य कोरी कल्पना है। स्वार्थियों ने अपने लाभ के लिए यह मन-गढन्त बहाना बनाया है।"

"सीते, भाग्य नहीं, मनुष्य का कर्म प्रबल है। कर्म के प्रहरी को भाग्य नहीं छलता है।"

"जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। कर्म के बन्धन से कोई मुक्त नहीं हो सकता।"

"बहन, यही भारतीय संस्कृति का सार है। उसके ज्ञान का सौरभ और पाण्डित्य का पराग है। समाज ने सदैव श्रम की वन्दना की है। जो श्रम नहीं करता, वास्तव में वही शूद्र है, क्योंकि जो श्रम करता है, वही 'श्रमण' है; इसलिए जो श्रम नहीं करता, वह अस्पृश्य है और तिरस्कार के योग्य है।"

"इस दृष्टि से जो हम श्रमिकों, सेवकों और सहकर्मियों का तिरस्कार करता है और हमें अछूत मानता है, वह देश और परमेश का अपराधी है।"

"सखि, वह तो हमारा तिरस्कार करता है बेचारा कि वह स्वयं परिश्रम नहीं करता और अपने इस पाप को छिपाने के लिए श्रमिकों को भाग्य और भगवान् के द्वारा परित्यक्त घोषित करता है।"

"अपनी इस कमजोरी को वे भी जानते हैं और हमसे भी छिपी हुई नहीं है, फिर भी जगत् और जीवन की कैसी विचित्र प्रवंचना है है कि श्रेष्ठ और शूद्र के भेदभाव ने मनुष्य को मनुष्य से अलग कर दिया है। प्रकाश के विपुल पुंज के मध्य में उत्तुंग प्राचीर खड़े कर दिए हैं।"

"सखि, सरिता के पुण्य-प्रवाह को दो धाराओं में बाँटने का यह प्रयास कभी सफल नहीं हो सकता। और फिर जो प्रभु को इष्ट नहीं है, वह अनिष्ट समाज का श्रेय नहीं बन सकता। उसका गुण अथवा साधन उसका वैभव अथवा विधान नहीं बन सकता।"

"इस अल्पवय में तूने यह सब कहाँ सीखा ?"

"मेरे मातुलग्राम में शूद्रों के निकाय में समाज-बहिष्कृत एक देवता निवास करते हैं। अपने अतीत के अपराधों के पश्चात्तापस्वरूप शूद्रों और दीन-दलितों की सेवा ही उन्होंने अपने शेष जीवन का विशेष लक्ष्य बनाया है। वहाँ उनके चरणों में बैठकर मैंने दिव्य वचनामृत पान किया है।"

"तुझे देखकर, कोई नहीं कह सकता कि यह शूद्र-कुलोत्पन्न कन्या है। यदि तुझे मूल्यवान् परिवेश पहना दिया जाए और आभूषणों से

तेरा शरीर अलंकृत हो तो कौन कहेगा, तू राजकुमारी नही है ?" कहकर सीता चुप रह गई।

"यहाँ तू गलती करती है, शरीर और आभूषणो से नही, मनुष्य की उच्चता या क्षुद्रता, उसके सस्कार, उसके कर्म और उसके विवेक से पहचानी जाती है। आलि, कभी-कभी मेरे मन में यह उत्कृष्ट अभिलाषा उठती है और उठकर मेरे सर्वस्व को चुनौती देती है कि चित्तौड़ के इस अपराजेय दुर्गराज के शक्ति-सुमेरुदण्ड के समान विजय-स्तम्भ पर खड़ी हो जाऊँ और समस्त ससार को पुकार कर कह दूँ—संस्कार ही मनुष्य की जाति है ! सुनो, कर्म ही मनुष्य की जाति है। ज्ञान-अज्ञान ही मनुष्य की जाति है। उसकी क्षुद्रता, उसका अविवेक है और उसकी श्रेष्ठता उसका विवेक है। भाइयो, जन्म से कोई कुलीन नही, कोई अकुलीन नहीं ! मुझे कोई बताए, जिसे भगवान् ने बनाया, उसे मनुष्य क्यो ठुकराए ?" राजो अपने आवेश में कहती गई।

"तू सच कहती थी, वस्त्र और विभूषण से मनुष्य योग्य नही बनता। यदि जीवन-विकास के साधन और सुविधा-स्रोत उपलब्ध हों तो शूद्र-कुलोत्पन्न बालक भी परम पण्डित बन सकता है, वह भी वैद्य *अथवा विधायक; यांत्रिक अथवा स्मृतिकार बन सकता है।"*

"समाज को बनाकर देखो। व्यक्ति को बनाकर देखो !" कहती राजो कुटिया में चली गई। "मनुष्य की रचना करो। प्रभु की रचना करो," गुनगुनाती सीता भी दूसरी ओर चली गई।

उस समय दो बाँस के लगभग दिन चढ़ आया था और पूरब के फैलते हुए प्रकाश की धाराओं ने मैदान की हरियालियो को एक सघन और उजली छाया दे दी थी और लम्बी पगडण्डियों को लाल-लाल रग से भर दिया था।

राजो कुटीर के एक कोने में, घुटनो में सिर डाले बैठ गई—उसकी काली कलसी फूट गई थी और घर में पानी नही था और माँ को उत्तर देने का दायित्व उसे दु:खी कर रहा था।

आँगन में किसी की पदचाप उठ रही थी।

: ५ :

माँ ने पुकारा—

"राजो, ओ राजो !

भीतर से कोई उत्तर नही मिला।

माँ ने फिर से बेटी को पुकारा—

"राजो, ओ राजवंसी !"

राजवंसी ने झाँककर बाहर देखा, माँ खड़ी थी। उसके सिर पर चारे का गट्ठर था। राजो ने दौड़ कर माँ का हाथ बँटाया।

माँ बोली—

"आज भोर से ही काम में लगी थी। काम ही हमारा कर्त्तव्य है। वही हमारा धर्म है। वही हमारा परमेश्वर और वही हमारी पूजा है। लेकिन, आज मैं बहुत थक गई हूँ। राजो, अब मुझसे काम नहीं होता। तेरे पीले हाथ हो जाएँ तो मेरी सभी चिन्ताएँ मिट जाएँ।"

बेटी का मुँह अपने ब्याह की बात से लज्जा से लाल हो गया। उसने आँखें झुकालीं और चारे का एक तिनका तोड़ कर, उसे अपने दाँतों में, होठों में दबा लिया।

माँ ने उसकी ओर देखकर, पूछा—

"पुत्री कुटिया में अब तक चूल्हे का उजाला नज़र नहीं आता !

क्या बात है ? घर में अग्निसलाई नहीं थी तो पड़ोसिन से माँग लाती ?"

"आज मुझे पनघट पर देर हो गई !"

"क्यों ?"

"आज हम लड़कियों को राजपुत्र-कुमारों ने जल भरने से रोक दिया। अपने नुकीले तीरों से हमारे घड़े फोड़ दिए और हमें जलाशय तक न जाने दिया।" राजो के स्वर में रोष था।

सुनकर माँ स्तब्ध रह गई। अपनी पुत्री से भी अधिक वह इस तथ्य की गम्भीरता से परिचित थी कि उच्च वर्ण यदि निम्न वर्ण का अन्न-जल बंद कर देता है तो इस का परिणाम क्या निकलता है !"

"फिर ?" उसने पूछा।

"रोती-कलपती हम वहाँ से चली आई।

"कुमारों में अगुआ पृथ्वीराज होगा ?"

"हाँ, माँ ! वही सबसे आगे थे।"

"किसी ने उन्हें बुझाया नहीं ?"

"बुझाया। सामन्तराज सूरजमल उधर से निकले। उन्होंने पृथ्वीराज को रोका और समझाया-बुझाया। परन्तु वे भला किस की सुनें!"

"तुम तो चुप रहीं ?"

"मैंने कुछ नहीं कहा, इतना ही""सामन्तों के चाँदनी की खेती है, हमारे धूल की। वे प्रभु की सन्तान है, हम मनुष्य की ! सीता ने उन्हें सुनाकर ताना दिया— मनुष्य को, क्या प्रभु की संतान मार डालेगी ?"

"भगवान् एकलिंग सबकी रक्षा करें। हमारी कुशल करें। तुमने राजकुमारों के मुँह लगकर अच्छा नहीं किया। बौना चला आकाश छूने !" कुछ सोचकर माँ बोली—

"शूद्रों का समाज बुलाना पड़ेगा। पृथ्वीराज का उपद्रव बहुत बढ़ गया है। दीवानजी के राज्य में यह अन्याय नहीं चल सकता। पृथ्वीराज के कारण हमारे निकाय की न जाने कितनी अबलाओं की माँग उजड़ गई है ! हाय, जहाँ-तहाँ माँग जली लड़कियाँ नजर आती हैं !"

"यदि हम संगठित होकर दीवानजी की राज-सभा में प्रार्थी बनें तो अवश्य हमें न्याय-दान मिलेगा।"

"दीवानजी की राजसभा ने कभी किसी के साथ अन्याय नहीं किया है, बेटी! बात सिर्फ़ इतनी है कि वहाँ तक पहुँचना हमारे लिए कठिन है।"

"क्यों?"

"इसके लिए मंत्रियों को घूस देनी पड़ेगी।"

"राम-राम!"

"हाँ, यह पहली जरूरत है। परमभट्टारक महाराणा कुम्भकर्ण का युग और ही था। अब तो महाराणा रायमल्ल के शासन में, धन धर्म का स्वामी बन बैठा है!"

"स्वामी धन रहे या धर्म। हम तो दास ही बने रहेंगे। हमारा दासत्व हमारे सिर के साथ है।"

"मेरी समझ में नहीं आता, राजकुमार को हम दीनहीनों की राह में काँटे बिछाने से क्या मिल जाएगा?"

"अकेले हम ही उनके कोप के भाजन नहीं बने हैं। बड़े-बड़े सामन्त भी उनकी आँखों में काँटे से खटक रहे हैं। काकाजी सूरजमल और उनके साथी सारंगदेव को अपने प्राणों की चिन्ता है। युवराज जयमल की जड़ उखाड़ने को वे तुले हुए हैं। स्वयं उनके भाई साँगा घर से भागकर जंगली कबूतर बन गए हैं!"

—राजो को अपने ही कथन पर हँसी आ गई।

मुंह में ओढ़नी का पल्लव ठूँस कर वह कुटिया में गई और मिट्टी के एक छोटे-से पात्र में जल भर लाई—

"कल का ठंडा पानी है। पीओ। इससे थकान उतर जाएगी।"

"थोड़ा गुड़ ले आ।"

"लाती हूँ।" कहकर राजो कुटिया की ओर गई परन्तु पिछले द्वार से निकल कर सहेली के घर की ओर भागी। उसके यहाँ गुड़ नहीं था। माँ से कहती, तो वह माँगकर लाने से बरज देती।

"जड़ से यारी, पत्तों से बैर ! माँ ने पानी पीकर सोचा —"कुनारों से विरोध और उनके पूर्वजों के प्रति राजभक्ति ! यह दुरंगी चाल हम कैसे चल सकते हैं ! बेकार राजो ने बात बढ़ाई ! हमें, कुमारों के मुँह लग कर, क्या झंडे पर चढ़ना है ? और राज-सभा में जाने से भी क्या होगा ? कोई परिणाम निकले—मुझे तो नहीं लगता। पिता से पुत्रों की शिकायत ! भौंह से आँख की शिकायत करने से फायदा ? लड़कियों को रोक कर रखना पड़ेगा···राजो, अरी राजो···गुड़ लेने गई थी, कहाँ रह गई ?···यह लड़की इतनी बड़ी हो गई, अभी तक इसमें समझ-बुद्धि नहीं आई।"

राजो सामने से आती नजर आई—

"घर में गुड़ नहीं था। मंहेली के यहाँ से ले आई।"

"रहने दे। मैं पानी पी चुकी।"

"अरे !"

"देख राजो, मैंने सोचा : कुलीनों के मुँह लगना हमारे लिए हित कर नहीं है।" इसमें हमारी हानि ही होगी। तुम सब लड़कियाँ सामंतों के जलाशय की राह जाना ही छोड़ दो।"

"माँ, 'गगन-सागर' जलाशय सामन्तों का ही नहीं है, उसे प्रजा ने बनाया है, जाने कितने दिन भूख-प्यास सहकर। और माँ तुम तो जानती हो, एक बार जब यह जलाशय सूख गया था।···"

"सूख गया था, बेटी !" माँ ने दुहराया।

"सूख गया था, और राजपुरोहित ने राणाजी को राय दी थी।···"

"राय दी थी पुत्री ! " माँ का कंठ भर आया।

"राय दी थी कि किसी शूद्र की इसमें बलि दी जाए !"

"बलि ! हाँ, बलि दी जाए ?" माँ ने आँखें पोंछी।

"तब बलि देने से पहले, मंत्रियों ने उन काले दिनों में हम से काले तिल चबवाए !" राजो के होठ फड़कने लगे।

"तिल ! हाँ तिल चबवाए !" माँ फूट-फूट कर रो पड़ी।

"और माँ ! उस सूखे जलाशय को छलाछल भरने के लिए कि

जल भगवान् महारुद्र के शीश पर झरती शीतल धारा बने, सामन्त-पुत्रियों और कुल-वधुओं के वारि-विहार का स्रोत बने, ब्राह्मणों और पुरोहितों के प्रातःकालीन परिमार्जन का प्रवाह बने ! ..."

"प्रवाह बने !" माँ ने आँसू भरी आँखें उठाकर देखा !

"प्रवाह बने इसलिए इस जलाशय में मेरे एक भाई की तुम्हारे एक पुत्र की, प्रथम और इकलौते पुत्र की बलि दी गई ।"

"तब मैं प्रार्थिनी बनी थी पुरोहितों की सभा में—मेरी नवविवाहित वधू विधवा हो जाएगी ।"

"मैंने सब सुना है, उन्होंने तुम्हारी प्रार्थना सुनकर अट्टहास किया था और आश्चर्य प्रकट किया था—शूद्राणी और विधवा ! अरे, विधवा हो जाएगी तो दूसरा जवान ढूंढ़ लेगी । शूद्र-नारियों की आँखें पति की खोज में प्रवीण होती हैं ! फिर, एक अट्टहास !"

"पुत्री, वही अट्टहास आज भी मेरे कानों में गूंज रहा है । तब मैंने निवेदन किया था—महाराज, मेरा एक ही लाल है उसे न छीनिए । मैं दासी बन कर आजीवन आपके खेतों में काम करूँगी ।"

"परन्तु उन्होंने एक न सुनी । फिर सरोवर की सूखी और तड़की हुई माटी की माँग भैया के लहू से लाल हो गई और भाभी की माँग वैधव्य की आग से काली पड़ गई ।"

"वह आ रही है बहू ! हाय, ऐसा रूप तो ब्राह्मण-पुत्रियों में ही देखा है ! मैंने कितना इसे कहा, दूसरा घर-वर देख ले । "

"भाभी ने पुरोहितों की वाणी को झुठला दिया । धन्य है मेरी भाभी ! इसने दिखा दिया है कि ऊँच या नीच भारतीय नारी एक ही पति का वरण करती है । जीवन पर्यन्त अपने धर्म का पालन करता है ।"

"नीच और शूद्र होने से क्या ! हमें भी मानव तन मिला है, मन मिला है ।"

"मन है तो भाव भी होंगे ही । फिर ऊँच-नीच की बात ही कहाँ रहती है ?"

"हिम की शीतलता और अग्नि की उष्णता का अनुभव ब्राह्मण और शूद्र को समान रूप से होता है ।"

"प्रिय का वियोग ब्राह्मण नारी के लिए जितना उत्पीड़क है, उतना ही शूद्र नारी के लिए भी है।"

'हम पाषाण नहीं हैं और वे अकेले ही चेतन नहीं हैं। यदि उनमें जीव है तो हम भी जड़ नहीं हैं। जन्म हमें भी मिलता है और मृत्यु उन्हें भी मिलती है।"

भाभी समीप आ गई। उनके सिर पर बड़ी-सी टोकरी थी। ऊँचे उठे एक हाथ से उसे थामे रही। राजो के निकट रुक कर बोली—

"माँ, आज ननदधन किससे रूठ रही हैं ?"

"अपने आप से। रानी रूठे, अपना मुँह।"

"मैंने सुना, आज तो ननदधन ने स्वामि-पुत्रों को एक की वीस सुनाई ?

"मुझे उसी की चिन्ता है, बहू ! कुल-देवता हमारी रक्षा करें। नागनाथ को चांदी का छतर चढ़ाऊँगी। राज-कोप से रक्षित रहें।

राजो ने कहा—

"मैंने तो कुछ न कहा-सुना। मैं चुप भी रहूँ फिर भी नाम मेरा ही लिया जाएगा। सारे नगर में ऊँट वदनाम।"

"लाख बात की एक बात, तू घर में रहा कर।"

"शूद्र-कन्या घर में रहे तो अकाल पड़ जाएगा—ब्राह्मणों की मान्यता है।" भाभी ने कहा।

राजो ने उत्तर दिया—

"हाँ, वे नहीं चाहते कि उनकी कन्याओं की भाँति शूद्र-कन्याएँ भी सुख पाएँ। समान पद की अधिकारिणी हों। शूद्र-कन्याएँ श्रम करना अस्वीकार कर दें तो अकाल पड़ेगा ही। इसी कारण बड़ों ने उन्हें बेगार के लिए बाध्य किया है।

अपनों की दुर्दशा देखते-देखते मेरा तो खून पानी हो गया है।" कहती, माँ वहाँ से चली गई।

माँ के जाते ही राजो की चपलता तरंगित हुई। दौड़कर वह भाभी से लिपट गई

भगवान् महारुद्र के शीश पर झरती शीतल धारा वने, सामन्त-पुत्रियों और कुल-वधुओं के वारि-विहार का स्रोत वने, ब्राह्मणों और पुरोहितों के प्रातःकालीन परिमार्जन का प्रवाह वने !....''

"प्रवाह वने !'' माँ ने आँसू भरी आँखें उठाकर देखा !

"प्रवाह वने इसलिए इस जलाशय में मेरे एक भाई की तुम्हारे एक पुत्र की, प्रथम और इकलौते पुत्र की वलि दी गई ।''

"तव मैं प्रार्थिनी वनी थी पुरोहितों की सभा में—मेरी नवविवाहित वधू विधवा हो जाएगी ।''

"मैंने सव सुना है, उन्होंने तुम्हारी प्रार्थना सुनकर अट्टहास किया था और आश्चर्य प्रकट किया था—शूद्राणी और विधवा ! अरे, विधवा हो जाएगी तो दूसरा जवान ढूंढ़ लेगी। शूद्र-नारियों की आँखें पति की खोज में प्रवीण होती हैं ! फिर, एक अट्टहास !''

"पुत्री, वही अट्टहास आज भी मेरे कानों में गूंज रहा है। तव मैंने निवेदन किया था—महाराज, मेरा एक ही लाल है उसे न छीनिए। मैं दासी वन कर आजीवन आपके खेतों में काम करूँगी।''

"परन्तु उन्होंने एक न सुनी। फिर सरोवर की सूखी और तड़की हुई माटी की माँग भैया के लहू से लाल हो गई और भाभी की माँग वैधव्य की आग से काली पड़ गई।''

"वह आ रही है वहू ! हाय, ऐसा रूप तो ब्राह्मण-पुत्रियों में ही देखा है ! मैंने कितना इसे कहा, दूसरा घर-वर देख ले। ''

"भाभी ने पुरोहितों की वाणी को झुठला दिया। धन्य है मेरी भाभी ! इसने दिखा दिया है कि ऊँच या नीच भारतीय नारी एक ही पति का वरण करती है। जीवन पर्यन्त अपने धर्म का पालन करता है।''

"नीच और शूद्र होने से क्या ! हमें भी मानव तन मिला है मन मिला है।''

"मन है तो भाव भी होंगे ही। फिर ऊँच-नीच की वात ही कहाँ रहती है ?''

"हिम की शीतलता और अग्नि की उष्णता का अनुभव ब्राह्मण और शूद्र को समान रूप से होता है।''

: ५ :

दशपुर के पथ पर, पुण्यतोया शिवना के किनारे-किनारे राजकुमार मेदिनीराय की सेना बढ़ रही थी।

कुमार ध्यानमग्न था कि अचानक—

"कुमार की जय हो! महाराजकुमार!" सेवक रुक कर पुकार रहा था।

"क्या बात है सिपाहीजी?" कुमार का ध्यानसूत्र बिखरा।"

"अन्नदाता! दो फिरंगी और एक पादरी श्रीमान् से मिलना चाहते हैं।"

"कहाँ हैं वे?"

"अचेरी-दुर्ग के द्वार पर विराम ले रहे हैं।"

'तो क्या हम अचेरी तक पहुँच गए?"

"अन्नदाता, पधारिये! इधर!" सेवक आगे-आगे दौड़े—

"सावधान! सा ·· व · धान ···भगवान् महाकाल के वरदान···· एकलिंग के आशीषरत्न, चिरंजीव राजकुमार मेदिनीराय पधार रहे हैं! सावधान!"

ग्रामीणजनों की भीड़ बढ़ने लगी। दौड़-दौड़ कर ग्रामजन आने लगे—फल-फूल, कन्द-मूल जो जिसके हाथ लगा, लेकर दौड़ा।

"छुड़ाओ तो जानें ?"

"पराया हो तो छुड़ाएँ, अपने को कौन छुड़ाए ?"

"तुम्हें देख कर मेरा मन मोद की लहरें लेता है।"

"तुम अपने भैया की परछाई हो, इसलिए मुझे बहुत भली और सुहावनी लगती हो।"

कहते भागी उदास हो गई।

माँ की आवाज़ आई—

"आज का आहार नहीं पकेगा ?"

ननद और भाभी ने चौंक कर एक-दूसरी को देखा।

रावले में घण्टनाद गूँजा।

नाद का गुंजनस्वर पहले दोनों के कानों में प्रवाहित हुआ फिर बड़ी देर तक दूरस्थ पहाड़ियों में गूँजता रहा।

: ५ :

दरापुर के पथ पर, पुण्यतोया शिवना के किनारे किनारे राजकुमार मेदिनीराय की सेना बढ़ रही थी।

कुमार ध्यानमग्न था कि अचानक—

"कुमार की जय हो ! महाराजकुमार !" सेवक रुक कर पुकार रहा था।

"क्या बात है सिपाहीजी ?" कुमार का ध्यानसूत्र बिखरा।"

"अन्नदाता ! दो फिरंगी और एक पादरी श्रीमान् से मिलना चाहते हैं।"

"कहाँ हैं वे ?"

"अचेरी-दुर्ग के द्वार पर विराम ले रहे हैं।"

'तो क्या हम अचेरी तक पहुँच गए ?"

"अन्नदाता, पधारिये ! इधर !" सेवक आगे-आगे दौड़े—

"सावधान ! सा" व 'धान""भगवान् महाकाल के वरदान"" एकलिंग के आशीपरत्न, चिरंजीव राजकुमार मेदिनीराय पधार रहे हैं ! सावधान !"

ग्रामीणजनों की भीड बढ़ने लगी। दौड़-दौड़ कर ग्रामजन आने लगे—फल-फूल, कन्द-मूल जो जिसके हाथ लगा, लेकर दौड़ा।

मेदिनी' वह नाम था जो मेदपाट (मेवाड़), मालव, गुजरात और खानदेश के घर-घर में कहानी बन चुका था।

ग्राम-कन्याएँ मंगलघट लिए सम्मुख आईं। राजकुमार ने अप कण्ठ से उतार-उतार कर मुक्ताहार उन्हें दिये। वे बिना-देखे, बिन सोचे दे रहे थे। क्षात्रपुत्र था, वणिकवृत्ति नहीं थी मन में! बस 'देना' जानता था!

अश्व से उतर कर अचेरी-माता को प्रणाम किया। बलि के लिए सेवकों को अजादल का संकेत दिया। वृद्ध चारण आगे बढ़ा—"आर्य सम्राट्, पृथ्वीनाथ, राजराजेश्वर, एकलिंग के दीवान, महाराणा के नाती कुमार को नमस्कार!"

"चारणराज! प्रणाम स्वीकार कीजिए! आप आयुवृद्ध और ज्ञानवृद्ध! फिर भला हमें 'नमस्कार' कर, इहलोक का भार क्यों बढ़ा रहे हैं?"

"भाणेजलालजी! भावी भारत के सूत्रधार! होनहार महामंत्री के रूप में, इतिहास आपका स्मरण करेगा, मैं तो साधारण चारण हूँ!"

राजकुमार, सुनकर, तनिक हँसा। आगे बढ़ गया।

चारण पीछे-पीछे आया—राजद्वार पर तीन फिरंगी हैं। उनमें दो नर, एक वानर है। युवराज ज़रा···" उसने आँख से संकेत किया।

"वैशाली के दत्तात्रय मन्दिर में···तीसरे पहर!"

कुमार ने, अप्रकट इंगित दिया। और जैसे, पारितोपिकरूप अपनी मूल्यवान अँगूठी दी।

चारण 'नमस्कार सूरां नरां' रटता-सा चुपचाप चला गया। उस मन में कई योजनाएँ चल रही थीं। सर्जन और संहार के कई छन्द रचना और आकृति पा रहे थे!

फिरंगियों ने झुक-झुक कर राजकुमार की अभ्यर्थना की। बहु मोती और रत्न भेंट किए। राजकुमार ने उन्हें केवल छू कर कि मुक्ताहार अपनी ओर से मिलाकर, अतिथि फिरंगियों को लौटा दि

राजकुमार की चतुर दृष्टि में फिरंगियों का स्वरूप छिपा न फिर भी अपने मन का भाव गोपन रख कर उसने पूछा—

...था एकलिंग

"बैठिए ! मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

फिरंगियों में-से एक जो त्रिपुटी का नेता प्रतीत होता था, उठकर बोला—"राजन् ! पुर्तगाल से आए हैं। हम लोग इतिहासकार, यात्री हैं।"

"बड़ी अच्छी बात है। पुर्तगाल को भारतवर्ष के इतिहास में बड़ी दिलचस्पी मालूम होती है ! वाह, हम तो यह सब देखकर बहुत प्रसन्न हैं !"

"हुजूर ! अन्नदाता ! मेरा नाम अल्फांजो है। गोकर्ण (गोआ) में पुर्तगाल के राजा का राज्य···है।"

सुनकर राजकुमार की भ्रकुटि तन गई—

"अतिथि हो फिरंगी ! वरना सिर धड़ से अलग कर दिया जाता!"

एक सेवक से न रहा गया—"नरभक्षी, गौभक्षी फिरंगी पुर्तगाली ! गौमाता और तुलसीमाता को अपमानित करने वाले तुम्हारी यह मजाल ! कि भव्य भारत के भू-भाग को पुर्तगाल के अर्द्धसभ्य राजा का राज्य कह कर हमारी मातृभूमि का अपमान करो !"

कुमार की भुजाएँ फड़कने लगीं—

"याद है फिरंगी साहब, सन् १४६८ में पुर्तगाली दॉन वास्को और उसके हाकिम हमारे पुण्यदेश मे आए थे।"

"याद है महाराजकुमार···अपराध क्षमा हो !"

"तब तो तुम्हें यह भी याद होगा कि कोड़िकोड़ (कालिकट), केरल के प्रातःस्मरणीय महाराजाधिराज सामुरिन के ब्राह्मण मन्त्रिदेव ने दॉन वास्को का स्वागत किया था।"

"किया था महाराजकुमार !" दूसरे फिरंगी ने बार-बार सिर हिलाकर कहा—"किया था।"

"इसलिए किया था कि इस देश की परम्परा है अतिथि को देवता मानने की।"

"कुमार की जय !" लाल दाढ़ी वाला पादरी बोला।

"लेकिन पादरी साहब, हमें कहते हुए हार्दिक दुःख है कि पुर्तगालियों

ने हमारे आतिथ्य का अपमान किया। हमारे भोलेपन का जवाब अपनी कुटिल-चतुराई से दिया। हमारी सरलता को छलकर…"

कुमार रोषवश कुछ कह न सका। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें लाल-लाल अंगारों-सी धधकने लगीं।

सेवक ने आगे बढ़कर कहा—"अन्नदाता, अपराध क्षमा हो! उन दिनों सेवक केरल में था। उसने अपनी आँखों देखा—इन फिरंगियों ने किस प्रकार ब्राह्मण मन्त्रिदेव को धोखा दिया और कोड़िकोड़ (कालिकट) जैसे सुन्दर नगर में आग लगाई। अन्नदाता, कई अबलाओं को पकड़कर ये अपने साथ ले गए। गोकर्ण के मुसलमानों का कत्लेआम किया। मस्जिदें गिरादीं और उन्हें बलात् ईसाई बनाया।"

"फिरंगियों के पिछले कारनामे, जो इनके रंग से गोरे-उजले नहीं, काले हैं, देखते हुए इनका विश्वास नहीं किया जा सकता। फिर भी, चूंकि ये अतिथि हैं, इनका किसी प्रकार का अपमान न किया जाए, इनके देह-द्रव्य की पूरी रक्षा की जाए। इन्हें वाहन की सुविधाएँ दी जाएँ, जहाँ ये जाना चाहें खुशी से जाएँ, किन्तु प्रवेश और प्रस्थान के समय इनकी भरपूर तलाशी ली जाए।"

"जो आज्ञा अन्नदाता!" अचेरी का दण्डनायक सैनिकों के ढंग से अभिवादन कर, एक ओर हट गया। उसने तत्काल अपने सैनिकों को आदेश दिया। कुल छह आदमी आगे बढ़े। दो-दो सैनिक एक-एक फिरंगी पुर्तगाली की तलाशी लेने लगे।

प्रथम दो फिरंगियों के पास कुछ न मिला। फटे हुए कपड़े, सड़ा-सूखा मांस, बदबूदार मछलियाँ, गन्दी मदिरा के पीपे और ताँबे के कुछ सिक्के थे।

किन्तु दढ़ियल पादरी के पास कुछ कागज-पत्र भी थे। उसके लम्बे लबादे और कोट के नीचे गुप्त रीति से छिपाए गए थे। सैनिकों ने फौरन उन्हें राजकुमार के सामने पेश किया—

"कुमारदेव की जय हो! फिरंगी पादरी के परिवेश से ये कतिपय पत्रक प्राप्त हुए हैं।"

राजकुमार ने उन्हें गौर से देखा, फिर व्यंग्यपूर्वक पूछा—

"पादरी पंडितजी, ये कौन-से शास्त्रों से नक्शे हैं ? ये कौन-से स्वर्ग के मानचित्र हैं ? ये किन-किन परियों और हूरों के हालात हैं ?"

"क्षमा ''क्षमा क्षमा !"—पादरी थर-थर कांपने लगा।

कुमार मेदिनीराय ने कहा—"दण्डनायकजी !"

"घणीखम्मा अन्नदाता !" दण्डनायक दौड़ कर उपस्थित हुआ। "आपने आज तक जितने पाप किए वे सब लोप हो जाएँगे। इन पादरीराम को कुछ रिश्वत दीजिए—ये स्वर्ग के पहरेदारों के नाम एक चिट्ठी लिख देंगे। क्यों पादरी साहब ?"

पादरी ने सिर हिला कर 'हाँ' कहा—"पादरीजन स्वर्ग के नाम खत भेजता है।"

सुनकर राजकुमार खिलखिलाया।

फिर गम्भीर स्वर में दण्डनायक से कहने लगे—"जानते हैं ये मानचित्र कहाँ के हैं ? ये'''ये है मरुद्वीप का नक्शा'''मैं अच्छी तरह पहचानता हूँ '' ये सूरत के महामहिम बन्दर का नक्शा। ये '' मोहमयी और माहिष्मती (माहिम) के मुसलमान नरेन्द्र के सामरिक महत्त्व के संस्थानों के कागज। ये रहे गुजरात के समर-केन्द्र। ये आपके दशपुर के दुर्ग का मानचित्र।''''वाह ! वाह !! जासूसी कोई फिरंगियों से सीखे।"

फिर कड़क कर बोले—"ले जाओ इन्हें ! पंचजन न्याय करें''''' दण्डनायकजी, मन्त्रीजी के पास स्वयं उपस्थित होकर समस्त सूचना प्रस्तुत कीजिए और गुजरात के शाह को तत्क्षण पूरा प्रमाण भेजकर, सम्वाद दीजिए कि "सिंह सोता रहेगा तो वानर राज्य करेगा। सूरत की सूरत बदल जाएगी।"

अपराधियों को लेकर सैनिक चले गए।

पवनदूत पुनः अपने पथ पर बढ़ा !

६ :

श्रेष्ठिपत्नी ने आदेश दिया—

"वल्लभी, तू यहाँ रह। शेष सब दासियाँ जा सकती हैं।"

रम्भा तभी एक व्यक्ति के साथ भीतर आई। देखकर श्रेष्ठि आश्चर्य से खड़े हो गए। और फिर से बैठ गए। रम्भा उस व्यक्ति को आसन देकर चली गई। श्रेष्ठि का इंगित पाकर मीनाक्षीदेवी भी अपने विश्रामवास में चली गईं।

आगन्तुक व्यक्ति बहुत बड़ा गुप्तचर था। चित्तौड़ से आ रहा था। वहाँ के समाचार, गुप्त रहस्य और सामरिक भेद लाना, उसका काम था और इस काम के लिए उसे मुँहमाँगा धन मिलता था। इन रहस्य और भेदों और गुप्त सूचनाओं को विदेशी म्लेच्छों तक पहुँचा कर नगरश्रेष्ठि अपनी लक्ष्मी को मुटा रहा था। दिल्ली के लोदियों से उसका गहरा और गुप्त सम्बन्ध था। गान्धार के मुग़लों से भी उसका सम्पर्क था।

और इन सारे सम्पर्कों और सम्बन्धों और व्यवहारों को उसने बहुत बड़े व्यापार का बढ़िया बाना पहना रखा था और धर्म-कार्य—दान, पुण्य, अन्न-क्षेत्र, मन्दिर-निर्माण, गुरु-सेवा, शाला-स्थापना आदि के जाल-जंजालों से ढक दिया था।

"सूरजसिंह ! अचानक तुम ?"

"महत्त्व के समाचार लाया हूँ, श्रीमान् ।"

"तो, जरा द्वार बन्द कर दो और इस आसन पर बैठ जाओ।"

सूरजसिंह ने द्वार बन्द कर दिया और आसन पर बैठते हुए पूछा—"माधुरीदेवी के बैरियो को क्या हो गया है ?"

"साधारण अस्वस्थता है, वैद्यराज और बड़ेहकीम आए थे। ठीक हो जाएँगी।"

"ईश्वर इन्हें दीर्घायु करें।

"धन्यवाद • कहो, क्या समाचार लाए ?" श्रेष्ठि ने कंचनपात्र मे केसरिया आसव छलकाते हुए पूछा—

'श्रीमान्, चित्तौड़ में मुझे मालूम हुआ कि महाराजकुमार मेदिनी-राय वहाँ आ रहे हैं। " बीच राह मे एक पारसिक रमणी से उनका संयोग हुआ और आजकल उसी के रंग मे डूबे हुए है।"

माधुरी चौंक कर बैठी। फिर लेट गई—

—'मेदिनीराय'''मेरा मेदिनी'''पारसिक रमणी' उसने मन ही मन सोचा और जोर से चिल्लाई—

"झूठ'''यह झूठ है !"

नगरश्रेष्ठि और सूरजसिंह की वार्ता मे व्यवधान आया लेकिन माधुरी को पुनः प्रशान्त देखकर, दोनो फिर से अपनी वार्ता मे विमग्न हो गए।

माधुरी बाहर-बाहर प्रशांत थी परन्तु भीतर-भीतर उसका मन अशान्त था—'चर की बात यदि सच है तो ?'''नही, नही'''वे ऐसे नहीं हैं''''और''''मैं इन दुष्टो पर कैसे विश्वास कर लूँ, ये लोग देश-द्रोही हैं'''म्लेच्छो और यवनो से इनके सम्पर्क हैं। ''अब क्या होगा ? इस समय मेदिनी कहाँ है ''' ? मुझे उसके पास जाना चाहिए'''जरूर जाना चाहिए।''' वल्लभी मेरे साथ जाएगी '' मैं उन्हे सब कुछ बता दूँगी मेदिनी, तुम कहते हो पापी चाहे कोई भी क्यों न हो, उसका संहार होना ही चाहिए मेरे पिता '' पूज्य पिता लोदियो और गांधारी

यवनों के गुप्तचर हैं।…जासूस हैं…हे महाकाल…हे जिनदेव यह सब मैं क्या सुन रही हूँ…क्या देख रही हूँ ?'

"वल्लभ" वह जोर से पुकारती रही—"वल्लभ" !

"यह मैं आपके पायताने बैठी हूँ। आदेश देवि !"

"……" माधुरी ने सूनी-सूनी नजरों से फीके-फीके होठों से खोई-खोई आंखों से वल्लभी को देखा। वल्लभी उसके मन की पीर पहचानती थी और सदय, प्रेमल, सभाव दृष्टि से उसे अपलक देख रही थी।

दोनों की नजरें नजरों में समा गईं।

माधुरी फिर से शांत हो गई। वल्लभी ने उसे रेशमी चादर ओढ़ा दी और उसके पैरों को अपने हाथों से सहलाती रही।

नगरश्रेष्ठि और गुप्तचर सूरजसिंह पुनः अपनी बात में लग गए—

"श्रीमंत, चित्तौड़गढ़ में महाराणाजी युद्ध की जबरदस्त तैयारी कर रहे हैं। अभी दस लाख भाले ढलवाने का हुक्म दिया गया है। बड़ी संख्या में भील और मीणे एकत्र हो रहे हैं और उन्हें राजपूतों के साथ समान पद देकर, हिन्दू-सेना में भर्ती किया जा रहा है। यदि राणा का पक्ष बलवान बनता रहा तो जिन-धर्म की उन्नति रुक जाएगी।"

"परन्तु राणाजी ने कभी जिन-धर्म के विरुद्ध कोई आदेश नहीं दिया और न कोई शासनाज्ञा ही प्रकाशित की। उन्होंने तो सदैव जिनालयों के सम्मान का ध्यान रखा है।"

लेकिन श्रेष्ठि, आपको विदित है, राजपूतों के पास धन का अभाव है, और जिसके पास धन नहीं, वणिक उसका मित्र नहीं। राजपूतों में नीति का अभाव है। ये लोग सिर्फ़ लड़ना, मारना और मरना जानते हैं। जब कि यवन युद्धभूमि में छल, कपट और धोखे से काम ले रहे हैं, ये लोग धर्म-युद्ध के नशे में बेसुध हैं।…मूलतया इनका धर्म और कर्तव्य हिंसामय है और हमारे जिनधर्म के सर्वथा विपरीत है। आप यदि औघड़, अवधूतों और बाबाओं के कार्य-कलाप देखें तो आपका अहिंसक मन करुणा से द्रवित हो जाएगा। इसलिए हमारी वणिक

बुद्धि तो यही सम्मति देती है कि हमारा धार्मिक और आर्थिक-लाभ यवनों से, लोदियों से, और काबुल के मुगलों से सम्पर्क साधने में है। इससे हम, मुसलमानों की मदद से हिन्दुओं को बलवान बनने से रोकते रहेंगे और विजयी होकर साँगा को देश का शासक सम्राट् न बनने देंगे। मेरे खयाल में यही आता है कि राणाजी भारतवर्ष के सम्राट् बनना चाहते हैं। यदि वे अपने कार्य में सफल हो गए तो यकीन मानिए इस देश से जिन-धर्म की अहिंसक पताका सदा के लिए ओझल हो जाएगी।"

"इसका आशय यह निकला कि हम लोदियों और मुगलों से हार्दिक मैत्री रखें। उन्हें धन-दौलत के बदले समाचार बेचते रहें। उनसे गुलामों का व्यापार करते रहें। राजपूतों को निर्बल बनाए रखने के लिए ये उपाय उत्तम हैं। वैसे हम, राजपूतों में पारस्परिक फूट फैला कर, द्वेष और ईर्ष्या जगाकर, उन्हें एक-दूसरे के खानदानी दुश्मन बना सकते हैं और सूरजसिंह, हमें यही करना होगा। मेरी धर्म-प्राण आँखों में महाकाल के इस मंदिर की यह विशाल पताका जलते हुए छुरी की तरह चुभ रही है। मैं चाहता हूँ, उज्जयिनी में, विश्व में, सबसे बड़ा जिन-मंदिर बने। तुम्हें तो मालूम है, जब यह हमारा प्रासाद बन रहा था तब इसकी ऊँचाई को महाकाल के मंदिर से अधिक न बढ़ने देने के लिए ब्राह्मणों ने कितना विकराल विरोध किया था? लेकिन मुनि शांतिसागरजी महाराज ने मालवा के सूबेदार, नहीं भूलता हूँ—सुलतान मुहम्मद प्रथम से कह-सुनकर इस प्रासाद का पाँचवाँ, छठवाँ और सातवाँ तल्ला बनने दिया। बनने का आदेश पा लिया। अन्यथा, ये बम्हन तो, हमें यहाँ से भगाने पर तुले हुए थे। अतएव, राजपूतों से मौखिक सहानुभूति और प्रेम रखते हुए, हमें भीतर ही भीतर उनकी जड़ काटते रहना चाहिए।""देश में हिन्दुओं के शासन की स्थापना के संकट से सावधान रहना चाहिए।

"धन्य, धन्य! महाश्रेष्ठि धन्य! आपने मेरे निवेदन को चमका दिया! मैं जो कुछ कह रहा था"' शायद वह श्रीमंत के मन में भी था""

"...हाँ..." श्रेष्ठि ने झिझकते हुए स्वीकृति दी—"...प्रत्येक अच्छी बात प्रत्येक अच्छे आदमी के मन में रहती है।"

"श्रीमंत, आपको, इसलिए कि आप जिन-धर्म के, जिन-सम्प्रदाय के महाप्राण नेता हैं, एक ओर, अन्य संकट से परिचित रहना चाहिए। ऐसी मेरी विनम्र कामना है।"

"सूरजसिंह, निःसन्देह आप अपनी अभिलाषा प्रकट कीजिए।"

"श्रीमंत, यह कापालिक हमारे मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है।.... जब तक यह काँटा नहीं निकलेगा...." और सूरजसिंह ने अपने एक हाथ की एक उँगली पर दूसरे हाथ की दूसरी उँगली से काटने का संकेत किया। अहिंसा के इस अपूर्व प्रस्ताव को श्रेष्ठि ने सहर्ष स्वीकार किया, परन्तु कुछ दुविधा थी, सो पूछा—

"किंतु ·· कैसे ?"

"बतलाऊँगा बाद में।"

"लेकिन याद रखना संसार में यह सबसे कठिनतम कार्य है: कापालिक पर हाथ उठाना—हिमाचल को फूँक से उड़ाने की कोशिश है।"

"सूरजसिंह, वैसे मुझे तुम्हारी सूझ-बूझ पर पूरा विश्वास है जितना चाहो, धन कोषपाल से ले सकते हो।"

: ७ :

घण्टनाद ने साँगा को जगा दिया ।

हल्की-सी झपकी उसे आगई थी । सहसा घन्-घन् की सघन ध्वनि उठी । पहले वह विशाल घण्टराज के घेरे मे घहराई फिर बंधन से छूटी हवाओं की तरह अम्बर में ऊँची उठी और वहाँ वायुमडल के अतिम छोरों को छूकर तेजी से नीचे गिरी और पर्वतमालाओं की गहन कंदराओं के कानो में 'काऱ्या-माऱ्या-कुई' करती हुई पठार के मैदानो पर छा गई ।

इसी समय साँगा की आँख खुली ।

वह भूखा ही सो गया था ।

उसे याद आया प्रात.कालीन कलह के कारण विषाद का जो वातावरण बन गया था, उसके साए मे किसी कुमार ने भोजन ग्रहण नही किया और न किसी ने एक-दूसरे से आग्रह ही किया ।

मामीजी ने दो-तीन बार प्रयत्न किया । फिर वे चली गईं ।

नानीजी होती तो बात और थी । वे तब तक चैन न लेती, जब तक सभी राजकुमार उनकी देखतीआँखो भोजन न कर लेते । उनके स्नेह और दुलार मे अपरिमित शक्ति थी और उनकी घृणा और प्रति-

"…हाँ…" श्रेष्ठि ने झिझकते हुए स्वीकृति दी—"…प्रत्येक अच्छी बात प्रत्येक अच्छे आदमी के मन में रहती है।"

"श्रीमंत, आपको, इसलिए कि आप जिन-धर्म के, जिन-सम्प्रदाय के महाप्राण नेता हैं, एक और, अन्य संकट से परिचित रहना चाहिए। ऐसी मेरी विनम्र कामना है।"

"सूरजसिंह, निःसन्देह आप अपनी अभिलाषा प्रकट कीजिए।"

"श्रीमंत, यह कापालिक हमारे मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है।… जब तक यह काँटा नहीं निकलेगा…" और सूरजसिंह ने अपने एक हाथ की एक उँगली पर दूसरे हाथ की दूसरी उँगली से काटने का संकेत किया। अहिंसा के इस अपूर्व प्रस्ताव को श्रेष्ठि ने सहर्ष स्वीकार किया, परन्तु कुछ दुविधा थी, सो पूछा—

"किंतु… कैसे ?"

"बतलाऊँगा बाद में।"

"लेकिन याद रखना संसार में यह सबसे कठिनतम कार्य है … कापालिक पर हाथ उठाना—हिमाचल को फूँक से उड़ाने … कोशिश है।"

"सूरजसिंह, वैसे मुझे तुम्हारी सूझ-बूझ पर पूरा विश्वास … जितना चाहो, धन कोषपाल से ले सकते हो।"

: ७ :

घण्टनाद ने साँगा को जगा दिया ।

हल्की-सी झपकी उसे आगई थी । सहसा घन्-घन् की सघन ध्वनि उठी । पहले वह विशाल घण्टराज के घेरे मे घहराई फिर बंधन से छूटी हवाओं की तरह अम्बर में ऊँची उठी और वहाँ वायुमंडल के अंतिम छोरों को छूकर तेजी से नीचे गिरी और पर्वतमालाओं की गहन कंदराओं के कानों में 'कान्या-मान्या-कुई' करती हुई पठार के मैदानों पर छा गई ।

इसी समय साँगा की आँख खुली ।

वह भूखा ही सो गया था ।

उसे याद आया प्रात.कालीन कलह के कारण विषाद का जो वातावरण बन गया था, उसके साए में किसी कुमार ने भोजन ग्रहण नहीं किया और न किसी ने एक-दूसरे से आग्रह ही किया ।

मामीजी ने दो-तीन बार प्रयत्न किया । फिर वे चली गईं ।

नानीजी होतीं तो बात और थी । वे तब तक चैन न लेतीं, तक सभी राजकुमार उनकी देखतीआँखों भोजन न कर लेते । उनके स्नेह और दुलार में अपरिमित शक्ति थी और उनकी घृणा और प्रति-

हिंसा में अनन्त वल था। उनके स्वभाव के दो ध्रुव थे—प्रेम और घृणा।

नानीजी जिससे प्रेम रखतीं—वह अन्तहीन, असीम प्रेम का पात्र बनता और जिससे वे घृणा करतीं, उसे अपार घृणा का स्वामित्व स्वीकार करना पड़ता।

साँगा को वे वहुत चाहतीं। उसे जी भर प्यार करतीं।

पृथ्वीराज उन्हें ज़रा पसंद न था। उससे वे उतनी घृणा करतीं जितनी एक राजा अपने शत्रुराजा से करता है। इस घृणा का परिणाम था कि मरते-समय उन्होंने साँगा और पत्ता के नाम भरपूर धनराशि लिखवाई, परन्तु पृथ्वीराज और जयमल को कानी कौड़ी भी न दी।

आजीवन तो नानीजी ने अपनी प्रकृति की सुरक्षा का ध्यान रखा ही, मरणोपरान्त भी वह अपनी परम्परा में अखंड रहे, इसका पूरा प्रवन्ध अपने उत्तराधिकारी-पत्रक के द्वारा कर गईं!

पृथ्वीराज जितना वीर था, उसका स्वभाव उतना ही कायर था। उसका मन उसके तन के विपरीत था।

उसमें अतुल शारीरिक वल था परन्तु मनोवल का सर्वथ अभाव था।

साँगा से उसकी यों भी अनवन रहती थी।

अव इस अनवन ने वैर का रूप धारण कर लिया।

साँगा सौतेली माँ का पुत्र, उसका भाई था।

साँगा की माँ झाला राजकन्या थी।

पृथ्वीराज, माता और विमाताओं को मिलाकर, कुल अ माताओं में-से किसी का भी प्रिय नहीं था। तेरह भाइयों में जयमल ही उसे चाहता था।

जितना वह अप्रिय था, साँगा उतना ही प्रिय था।

पृथ्वीराज क्लान्त और उद्भ्रान्त था।

साँगा अक्लान्त और शान्त था।

फिर भी तेरहों भाई—तेरह रत्नदीपों की भाँति झिलमि

एकलिंग

थे। उनके सुकोमल तेज से मेवाड़ के राज-प्रासादों के प्रांगण प्रकाशित थे। रुद्र और आदित्य के समान वे सुशोभित थे।

सांगा ने सोचा—

नानीजी ने पृथ्वीराज को कुछ न देकर अच्छा नहीं किया। तो, मैं ही अपने भाग का एक अंश उसे दे दूंगा। क्षत्रिय के लिए तलवार का महत्व है, धन-दौलत का नहीं। धन और धरती तो वह अपनी भुजाओं के पराक्रम से अनन्त और असीम प्राप्त कर लेगा।

किन्तु, पृथ्वी-दादा को, क्या यों अपना जी छोटा करना चाहिए? वे हम सभी भाइयों में बड़े हैं तो क्या उनका हृदय छोटा होना चाहिए?

आखिर, बड़ा कहते हैं किसे? उसी को, जिसका हृदय बड़ा है।

—जो अधिक देता है।

जो अधिक लेता है, वह अधिकाधिक छोटा है।

मंत्रीजी के मुँह से सुनते-सुनते ही पृथ्वीदादा तलवार लेकर मुझ पर टूट पड़े!

मगर बीच में काकाजी सूरजमल कूद पड़े।

उनके साथी सारंगदेव दौड़े।

मैं बच गया।

—मैंने वार नहीं किया। दादा पर हाथ उठाऊँ? मेरी तलवार म्यान से बाहर आती ही नहीं। हाथ मूंठ पर जाता ही नहीं।

मैं भलीभाँति बता सकता हूँ, कुरुक्षेत्र में बेचारे अर्जुन की क्या दशा हुई होगी, जब उसने, मेरी तरह, अपने सामने, चारोओर भाई ही भाई देखे होंगे? भ्राता, चाचा, मामा, फूफा, साले, बहनोई और भांजे, भतीजे के अतिरिक्त कौन था उसके सम्मुख?

जो अपना था, वह वैरी था!

यानी वैर अपने-आप से था।

—शत्रु कहीं बाहर नहीं, अपने ही भीतर बैठा था!

सबसे पहले यदि किसी को मारना था तो अपने मन को मारना था।

वेचारा अर्जुन !

मन ने कहा—

और वेचारा साँगा !

हाँ, वेचारा साँगा !!

आखिर, इस विपाक्त वातावरण का कारण क्या है ?

मन ने उत्तर दिया—

राज्य—धन और धरती ।

हृदय ने निर्णय दिया—

मैं दोनों को छोड़ दूँगा । अपने पूर्वजों के विशाल साम्राज्य को त्यागकर, उसकी सीमा से दूर, कहीं चला जाऊँगा ।

क्या प्रभु रामचन्द्र ने—हमारे ही रघुवंशी, सूर्यवंशी पराक्रमी पूर्वज ने साकेत के राज्य का परित्याग नहीं किया ? नारियल का जल पीकर जिस प्रकार पंथी फल को फेंक देता है, उसी प्रकार श्रीराम ने राजसिंहासन छोड़ दिया !

इस हेतु कि श्री भरत से विद्वेष न हो ।

सहोदर का वाण सहोदर की कंठमणि का छेदन न करे !

भाई की तलवार भाई के गले पर न गिरे !

साँगा शैया से उठा और वाहर उद्यान में आगया ।

उसके आकर्णान्त विशाल लोचनों के सम्मुख प्रकाश के प्रति[illegible] [illegible]तैरने लगे । मन में आह्लाद के उत्स फूट चले !

उसने निश्चय कर लिया—वह वन में चला जाएगा ।

पिताजी—महाराणा रायमल्ल के चर वन में भी उसे ढूंढ़ लें[illegible]

शंका उठी !

वन में ढूंढ़ लेंगे ?

साँगा अज्ञातवास करेगा ! साधारण जीवन व्यतीत करेगा कर रहेगा । किसी से न कहेगा कि वह कौन है ?

'ग़रीव गड़रिया हूँ, श्रीमान् !'

उसने मन ही मन दुहराया और उसे हँसी आ गई ।

आज भोर के वाद यह पहली हँसी थी । इसलिए तो

लगी। भोर में तो वह खूब हँसा था, खिलखिलाया था। सभी भाइयों के मन शान्त थे। कोई उद्विग्न नही था। कोई क्षुब्ध नही था!

उन शूद्र-कन्याओं को जलाशय की राह में ही रोक कर कुमार सभी, प्रसन्न हुए थे।

तीर-कमान से उनकी काली-लाल कलशियाँ तोड़ने की प्रतियोगिता में मानो प्रत्येक कुमार, दूसरे से आगे बढ जाना चाहता था।

साँगा ने किसी की मटकी नही तोडी।

'जिस पात्र से किसी की प्यास बुझती है, उसे क्यो कर नष्ट किया जाए?'—मुझे उस वेला यही विचार आया।

काकाजी उधर से गुजरे। उन्हे देखकर वह शूद्र-कन्या जिसको उसकी सहेलियाँ राजो या किसी ऐसे ही नाम से पुकार रही थीं, शेर होगई।

बोली—

"कुमार की जय हो, अन्नदाता आपके चाँदी और चाँदनी की खेती है। हम धूल और धूप मे पैदा होते हैं और वही हमारी कमाई है। हम नीच हैं और आप उच्च हैं.........."

"तब छोकरी, बढ़-चढ़कर बातें क्यो बनाती है?" बीच मे पृथ्वीराज ने कहा था।

"अन्नदाता प्रभु की सतान हैं और हम मनुष्य की।"

"तब दूसरी सहेली ने बीच मे ही कह दिया था"—

"मनुष्य को, क्या प्रभु की संतान मार डालेगी?"

यह तर्क सामन्तराज सूरजमल को भा गया था। उन्होंने पृथ्वीराज और अन्य कुमारों को रोक दिया, लेकिन पृथ्वीराज ने इतना अवश्य कह दिया था—

"शूद्रे, तुझे मालूम है, सामंतकुल-पुत्रों को यदि तुझ-सी शूद्रा उपदेश देने का दुस्साहस करे, तो जानती है उसका दण्ड क्या है?"

दण्ड की कल्पना कर राजो काँप गई परन्तु अपने आक्रोश को आयु की अल्पता के कारण, वश मे नही रख पाई—

"ऐसे अपराधियों की जीभ काट ली जाती है ।"

"फिर ?"

"यदि मेरी जीभ काटने से तुम्हें संतोष हो तो मैं प्रस्तुत हूँ ।"

तब बड़ा कुहराम मच गया । सामन्तराज को भी क्रोध आया कि क शूद्र-कन्या इतनी धृष्टता करे !

उसके अपराधिन और पापिन होने के लिए यही क्या पर्याप्त नहीं है कि वह शूद्रा है !

सेवकों ने ढेले मार-मार कर शूद्र-कन्याओं को वहाँ से भगा दिया । भागती हुई लड़कियों के गोल में जब-तब राजकुमारों का छोड़ा हुआ तीक्ष्ण बाण, सनसनाता हुआ आ गिरता और वे घबराकर, चिल्लाकर, तितर-बितर हो जातीं ।

दूर से एक अट्टहास उठता !

फिर दूसरा, तीसरा और चौथा बाण आता । एक-एक डग उन शूद्राओं के लिए दुष्कर हो गया था । तब मैंने अपने बाणों से उनके बाणों को बीच में ही काट गिराया । इस पर पृथ्वीराज ने मुझे ललकारा—

मैंने उत्तर में एक और बाण चलाया ।

उत्तर न पाकर उसने जैसे स्वतः ही कहा—

"जो शूद्र है, वह सदैव शूद्रा का ही साथ देता है । एक दिन इ शूद्र को मजा चखाऊँगा ।"

पृथ्वीराज के इस कुटिल व्रण ने मेवाड़ की पवित्र धरती में प के बीज बो दिए ।

पृथ्वीराज जब इस प्रकार वाक्-व्यूह की वृथा रचना कर रहा जयमल ने स्मरण दिलाया—

"दादा,ज्योतिषी महाराज के आश्रम नहीं चलना है ?"

"चलना तो था । इन शूद्राओं ने शकुन खराब कर

पृथ्वीराज ने उत्तर दिया ।

जयमल ने घोड़े पर बैठते हुए कहा—

'दादा, वीरों का उत्साह-योग ही उनका मुख्य शकुन है।"

"हाँ, तुमने यह सुन्दर स्वर्णसूत्र सुनाया। आओ चलें।"

"इनसे भी पूछ-देखो ये भी अपना भविष्य जानते हैं? या इन्हें बोध हो गया कि आजीवन शूद्रों का समर्थन करना है! कभी ये भील-मीणों का पक्ष लेते हैं, कभी गुर्जर-आभीरों का!"

मैंने जयमल से कहा—

"मैं भी ज्योतिषी महाराज मंगल मेनारिया के आश्रम तक अवश्य आऊँगा।"

हम चल पड़े!

पृथ्वीराज, जयमल और सग्रामसिंह—तीनों राकुमारों ने मंगलजी के आश्रम की ओर अपने घोड़ों की बागडोर मोड़ दी।

तीनों अश्व पवनवेग से उड़ चले।

: ८ :

ज्योतिपाचार्य मंगल मेनारिया अपने समय का प्रसिद्ध ज्योतिपी था। काशी के पंडितराज प्रभाकर शास्त्री पाद-पद्मों में पच्चीस वर्ष बैठकर, मंगल ने वेद-वेदांग, न्याय, ज्योतिष, षट्दर्शन और साहित्य की शिक्षा ग्रहण की थी।

काशी से सीधा मेदपाट (मेवाड़) न लौटकर मंगल पंडित हिमालय की ओर चला गया था, जहाँ उसने बारह वर्ष तक विकट तप किया और तप पूर्ण होने पर दिगम्बर रूप में वह भूतस्थान (भूतान) में प्रविष्ट हुआ और वहाँ यक्ष, किन्नरों और गंधर्वों के प्रदेश में उसने तन्त्रविद्या में सिद्धि प्राप्त की।

लोग कहते थे—मंगल महाराज को 'कर्णसिद्धि' भी प्राप्त है; जिसके कारण यक्षगण उनके कानों में इच्छित संकेत देते रहते हैं। इसके अतिरिक्त मन्त्रबल से दिन को रात और रात को दिन बना देना मङ्गल महाराज के लिए बाएँ हाथ का खेल है। एक बार महाराणा कुम्भकर्ण की राजसभा में पण्डितों के मध्य शिरोमणि के समान मङ्गल महाराज भी विराजित थे। प्रसङ्गवश महाराज के मुख से निकल गया कि 'आज पूर्णिमा है।' विरोधी पण्डितों ने कहा—"आज पूर्णिमा नहीं है पण्डितराज, चतुर्दशी है।"

"आपका भ्रम है, आज पूर्णिमा ही है।"

'तब तो रात्रि में पूर्णचन्द्र का उदय ही सारी समस्या का निर्णय कर देगा कि आज चतुर्दशी अथवा पूर्णिमा।"

सभा-पण्डितों ने बात को बढ़ती देख यही स्वीकार किया कि चन्द्रोदय की प्रतीक्षा की जाए।

निशागमन होते-न-होते मैदानों में दर्शनार्थियों के समूह-के-समूह घरों से निकलकर आने लगे। आबाल-वृद्ध-युवा—सबके मन में कौतूहल था—आकाश किसके पक्ष को सत्य सिद्ध करेगा ? विपक्षी पण्डित भी गणित-गणना में कुछ नहीं हैं और मङ्गल महाराज को कैसे कम कह दें ?

जन-मण्डली की दृष्टियाँ गगन की ओर लगी थीं मानो चन्द्र का चाहक चकोर निर्निमेष दृष्टि से अम्बर की ओर देख रहा हो।

ठीक समय पर पूर्णचन्द्रोदय हुआ। दूसरी पूर्णिमाओं की भाँति, यह भी अपनी सोलह कलाओं से मिलकर अमृत-तरंगिणी-रजत-चन्द्रिका से चौदहों भुवन को प्रभावित कर रहा था।

जन-समूह मंगल महाराज की जयजयकार के घोष घहराता लौट गया। विरोधी पण्डितों के मुख म्लान हो गए।

दूसरे दिन, महाराजजी ने पण्डितराज से एकांत में पूछा—

'देवता, परसों आपने स्वयं मुझे अपने श्रीमुख से बतलाया था कि आज त्रयोदशी है, तो क्या चतुर्दशी और पूर्णिमा मिलकर एक होगईं ?"

"दीवानजी, नृपेन्द्र के सम्मुख मिथ्या भाषण नहीं करूँगा। कल अवश्य चतुर्दशी थी परन्तु भरी सभा में संजीवनी की तरङ्ग में मेरे मुख से निकल गया—आज पूर्णिमा है। राजन्, चर्म की तो यह देही है और चर्म की ही जिह्वा है, अतः यह फिसल जाए तो क्या आश्चर्य !"

महाराज मुसकराए—

"कैसे फिर आपके वचन की रक्षा हुई ?"

"गुरु का प्रसाद ! एकलिंग की कृपा । मैंने तीसरे प्रहर तक अमित विचार किया फिर निर्णय, कि क्यों न मन्त्रबल का प्रयोग करूं ? निदान, मैंने एक कांस्य थाली को अभिमन्त्रित किया और उसे आकाश की ओर, चन्द्रबिम्ब पर छा जाने का आदेश दिया। श्रेष्ठ ! समय पर चन्द्रिका चमक उठी ।"

"धन्य, महाराज धन्य," महाराणा ने हर्षोल्लास व्यक्त किया !

× × × ×

मङ्गल महाराज के आश्रम के शुक-सारिका तीनों राजकुमारों को देखकर स्वस्ति मन्त्रों का पाठ करने लगे ।

जयमल को शुकों का धाराप्रवाह संस्कृत पाठ विस्मयजनक प्रतीत हुआ । बड़े प्रयास पर भी वह संस्कृत की पाँच पोथियाँ पूरी तरह नहीं पढ़ पाया था ।

आश्रम के द्वार पर मङ्गल-कलश-धारिणी ब्राह्मण कन्याओं ने कुमारों का स्वागत किया ।

कुमारों ने मुट्ठी भर-भर स्वर्णमुद्राएँ उन पर न्योछावर कीं । और घोड़े से उतर कर, अपने शस्त्रादि वहीं छोड़कर उन्होंने आश्रम के अतिथि-कक्ष में प्रवेश किया ।

सेवकों ने तीनों अश्वों को विशाल वटवृक्ष की छविमान छाया में बाँध दिया ।

तीनों कुमारों को कुछ देर प्रतीक्षा करनी पड़ी, क्योंकि मङ्गल महाराज ध्यानस्थ थे ।

बाहर द्रुतगामी अश्व के खुरों की खट्-खट् सुनाई दी और ऊँचे उठते धूलिचक्र दृष्टिगोचर हुए । एक प्रचण्ड सैंधव पर सवार सूरज-मल वहाँ आए । उनके पश्चात् कुछ ही पल बीते होंगे कि एक दूसरे चपल तुरङ्ग पर सवार उनका चाचा सारङ्गदेव अज्जावत भी वहाँ आ पहुँचा ।

"काकाजी आप ?" पृथ्वीराज ने सूरजमल से प्रश्न किया ।

"वत्स, मैंने, सोचा, महाराज की सेवा में उपस्थित होकर मैं भी

तुम्हारे साथ अपने भविष्य का संकेत प्राप्त करूँ।"'

"और बड़े काकाजी (सारंगदेव) भी आ पहुँचे हैं। इन्हें शायद अपनी जागीर के बारे में पूछताछ करनी है!"

सारङ्गदेव बोला—

"ठीक कहते हैं आप। भैंसरोड़गढ़ की जागीर जबसे मुझे मिली है, मैं परेशान हूँ। कभी चैन से नही रह पाया।"

पृथ्वीराज ने सुनकर होठ काटा क्योंकि वह सारङ्गदेव से मन ही मन जलता था। और नहीं चाहता था कि महाराणा सारङ्गदेव को पाँच लाख से अधिक वार्षिक आय की जागीर प्रदान करें। अतएव वह समय-समय पर जागीर के काम में रोड़े अटकाता था।

"भाई-भाई का वैरी बन रहा है, कैसा समय आ गया है!" सूरजमल ने उसाँस लेकर कहा।

पृथ्वीराज जलभुन कर रह गया।

लेकिन साँगा को न पृथ्वीराज की कुटिलता पसन्द थी, जो ताप व्यक्त कर रही थी और न सूरजमल की सरलता, जो संताप व्यक्त कर रही थी। वह तो यही चाहता था कि सब मौन और शान्त रहें।

भाइयों मे किसी प्रकार का स्वार्थ-विग्रह न हो, मेवाड़ की भूमि और अधिक अब अपने ही दुलारों के शोणित से रंजित न हो। मेवाड़ को आवश्यकता है संगठन और एकता की।

"एक माला के मन के है हम सब! फिर कौन छोटा, कौन बड़ा है! माँ की समदृष्टि में सभी लाल समान हैं। यह तो हमारा विद्वेष है, जो हमे दम्भी और दुर्विनीत बनाता है।" साँगा प्राय. यह कहा करता था और इसीलिए उसके साथी उसे 'साधु साँगा' कहा करते थे। परन्तु कोई 'साधु' कहे या 'असाधु', साँगा को इसकी चिंता नहीं थी। उसे तो केवल भारत के भावी की चिंता थी। उस भारत की, जिसे एकता के सूत्र में संगठित करना चाहता था। जिसे एक ही छत्र की छाया में रक्षित रखना चाहता था। "एक देश, एक भेष, एक भाषा, एक पताका और एक प्राण"—एकत्व का उसका प्रथम मन्त्र था।

"एकता राष्ट्र की प्रथम आवश्यकता है", कहकर साँगा ने 'एकता' का महत्त्व योंही नहीं बढ़ा दिया था। यदाकदा वह कहा करता था—

"जो 'एक' है उसे अनेक भी नहीं हरा सकते ! कभी यह देश किसी से नहीं हारा। इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता जब किसी बाहरी शत्रु ने इस देश पर विजय पाई हो और इसे हराया हो ! जब-जब यह हारा, जब-जब यह पराजित हुआ—'अपने आपसे !' अपने ही आंतरिक शत्रु ने, अपने ही बांधवों ने, इसके अपने पुत्रों के विरुद्ध गद्दारी की। पुण्य, पवित्रता और धर्म की—यह देश चाहे जितनी चर्चा करे, इस देश में अधम और हीनकर्मा नराधमों और देश-द्रोहियों की कमी नहीं रही है। शूरवीरता का जितना बखान यहाँ किया जाता है, कायरता उतनी ही अधिक यहाँ है। मुख से युद्ध, बलिदान और विजय के व्याख्यान देना और मन में, आत्मा में स्वार्थ और शत्रु से समझौते के स्वप्न सँजोना इस देश के अनेक महत्त्वाकांक्षियों की पापपूर्ण, प्रवंचक परम्परा रही है !...."

इस भावावेश में वह रुकता नहीं—

"इसलिए संगठन और संघटन पहली ज़रूरत है। बिना स्वार्थ-त्याग के संगठन नहीं होगा। बिना बुराइयों और कुरीतियों को छोड़े नवीन संघटना नहीं होगी, नवनिर्माण और अभिनव अभ्युदय के अभिलाषी इस महान् और पवित्र देश को नूतन विधान चाहिए, जिसमें शक्ति व्यक्ति की स्वेच्छाचारिता की कारा की बंदिनी न हो। सत्ता उच्छृङ्खल राजपुत्रों के विलास की वस्तु न हो। शक्ति हो या सत्ता, उसका स्रोत समाज के नियन्त्रण में रहे, व्यक्ति पर समाज का अनुशासन रहे। व्यक्ति अपनी इकाई में मुक्त और आत्मनिर्भर हो परन्तु समाज के प्रति पूर्णरूपेण उत्तरदायी और त्यागभावना से भरपूर हो ! और समाज...."

"समाज..." साँगा कहे बिना न रहता—

"समाज एक स्वप्न है : मनुष्य में जो-कुछ दिव्य और अलौकिक है, वह उसके समाज की समृद्धि और समता में अभिव्यक्त होता है।

समाज व्यक्ति का स्वामी है और साथ ही उसका सेवक भी ! सागर का ममत्व अपार है बिन्दु के प्रति । सागर यह नहीं कहता कि बिन्दु का भिन्न अस्तित्व नहीं है, या उसका अपना महत्त्व नहीं है अथवा बिंदु के न होने से भी सागर बन सकता है !""

"बिंदु सिंधु का प्रतीक है, यही बिंदु की गरिमा, महिमा, और यशस्विता है । और सिंधु बिंदु के सर्वस्व के समर्पण को सहर्ष स्वीकार करे, यह सिंधु के अपने अस्तित्व के लिए आवश्यक है । बिंदु मिट जाएगा तो सिंधु भी मिट जाएगा । सिंधु न रहेगा तो बिंदु भी न रहेगा । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । एक दूसरे के अभाव की पूर्त्ति करता है ।

"और कोई यदि कहे कि बिंदु छोटा है और सिंधु बड़ा है तो, छोटा होने के नाते बिंदु का दायित्व भी छोटा है, उस पर कोई नियम-बन्धन नहीं । वह चंचल कितना ! और सिंधु, उसका दायित्व अनन्त ! दायित्व की गुरुता के कारण ही वह विराट् है । उसके बन्धन कितने ! मर्यादा में वह रहता है कि कभी सीमा नहीं छोड़ता, तट का व्रत नहीं तोड़ता !"

"सांगा से कोई कहे तो वह सौ बरस तक व्यक्ति, समाज, देश युद्ध और शांति पर बोलता रहे। वर्षों तक शास्त्रों और शस्त्रों की चर्चा करता रहे । न केवल शस्त्र की झंकारें वरन् शास्त्रों के अनेकांतिक मंत्रों की तरंगें भी उसका मन मोहती हैं ।

पण्डितराज मगल मेनारिया को देखकर पहले काकाजी —सूरजमलजी ने दंडवत् प्रणाम किया । फिर बारी बारी से सारंगदेव और तीनों कुमारों ने दंडवत् प्रणाम किया ।

पण्डितराज मंगल महाराज ने राजपुत्रों के नाना उपहार स्वीकार किए, जिन्हें उनकी पोषिता कन्या गौरी उठाकर भीतर ले गई ।

राजकुमारों ने अपना मतव्य प्रकट किया ।

ज्योतिषी ने कहा—

"मुझे आप सभी कुमारो की जन्म-पत्रियाँ देखकर प्रसन्नता होगी !

सबे अधिक आनन्द का विषय और क्या हो सकता है ! मेरी
स समय दो सौ तीस वर्ष से कुछ अधिक ही है। मेवाड़पति
न् एकलिंग के सभी पुण्यश्रेय दीवान की कुण्डलियाँ मैंने देखी हैं
पने हाथों अंकित की हैं। प्रत्येक महाराणा, सामान्य और श्रेष्ठि;
क राजपुत्र, अधिकारी और कुलपुत्र विगत युगों में यहाँ आता रहा
....” वृक्ष के समान अति वृद्ध वह ज्योतिषी मुसकराया—

“अब तो नवयुग के आप नवयुवकों को इस विद्या पर विश्वास
हीं रहा।”

“महाराज, विश्वास नहीं होता तो यहाँ तक आते ?” पृथ्वीराज
ने कहा।

ज्योतिषी ने श्वेतकेशों से अलंकृत अपना शीश हिलाया। अब वह
जन्मपत्री देखने लगा।

पृथ्वीराज व्यग्र हो रहा था। पहले उसने अपनी—जन्मपत्री
ज्योतिषी के चरणों में रखी। वह, यों भी, स्वभाव से उतावला और
जल्दबाज था। लोग उसे ‘उड़णा पृथ्वीराज’ भी कहते थे।

ज्योतिषी ने कुंडली को देखा।

फिर दृष्टि पृथ्वीराज के चेहरे पर डाली।

धीमे-धीमे शीश को गति दी।

मुँह खोला—

“कुमार पृथ्वीराज आप बड़े प्रतापवान् और विक्रमवंत हैं। आपके
पराक्रम का प्रवाह अखण्ड रहेगा।”

इतना ही कहा और अब जयमल की जन्मपत्री पढ़ने लगा। पृथ्वी-
राज सहज ही पीछा छोड़ने वाला नहीं था—

“महाराज, मैं कितनी अवधि तक मेदपाट पर शासन करूँगा ?”

“शासन, सत्ता, भाग्य बल और भुजबल पर निर्भर है। ज्योति
तो एक गणित है, कुमार ! वह भला, भाग्य के अगणित की गण
कैसे कर सकता है ! फिर भी आपके ग्रहयोग अनुकूल हैं—तृत
स्थान में मंगल है। छठे स्थान में सूर्य है और ग्यारहवें स्थान

उच्च शनि है। आप सदैव विजयी होंगे, किन्तु पिता की विद्यमानता में ही आपके देहांत का योग है।"

सारंगदेव और सूरजमल भी चुपचाप सुनते रहे।

तब पृथ्वीराज का मुख म्लान हो गया—ज्योतिषी ने यह नहीं बतलाया कि वह सिंहासन का स्वामी कब बनेगा ?

पंडितराज ने जयमल से कहा—

"पृथ्वीराज से आप में कम पराक्रम है। अकारण अपने प्राणों को संकट में न डालना ! आपका मृत्युयोग भी विकट है। पिता का आप पर बहुत प्रेम है, उन्हें आपका मरण-संताप सहना पड़ेगा।"

सांगा की बारी सबसे बाद में आई। पंडितराज ने सांगा की कुण्डली देखकर हर्ष प्रकट किया—

"प्रकृति अति गम्भीर है, शान्त है। स्वार्थ छू भी नहीं गया। अत्यन्त क्षमाशील और उदार ! युद्ध-कौशल में अद्वितीय और रणांगण में सदैव अपराजेय ! विजयश्री नित्य वरण करेगी !"

ज्योतिषी मौन रह गया। परन्तु उसकी दृष्टि पत्री पर लगी रही।

पृथ्वीराज ने पूछा—

'महाराज, अब क्या देख रहे हैं ?"

"एक विशेष विधान है।"

"कौनसा ?" पृथ्वीराज ने ही पुनः प्रश्न किया।

सांगा प्रशान्त बैठा रहा। भविष्य के प्रति न उसमें जिज्ञासा थी, न भय था, न आशा न निराशा ! वह कहा करता था—"मनुष्य स्वयं अपने भाग्य और भविष्य का निर्माता है।"

ज्योतिषी मुसकरा कर बोला—

"राजकुमार संग्रामसिंह 'संग' की इस जन्मपत्री में राजयोग है। पंचम् और नवम् स्थान में शुभ ग्रह पक्ष में हैं। नवांश में बृहस्पति है।"

"और भी कुछ कहिए। राज्य इन्हें मिलेगा या मुझे ?"

"बृहस्पति के पश्चात्"' हाँ, आयुष्मान् कुमार, ऐसे शुभ ग्रहों का

। जिसकी कुण्डली में होता है वह अवश्य चक्रवर्ती सम्राट् वनता
!... आज इतना ही। मेरी यह आराधना की वेला है...।"

इतना कहकर ज्योतिषी खड़ाऊँ खटखटाता भीतर चला गया।

साँगा के चेहरे पर एक ही भाव था--वह न प्रसन्न था, न
अवसन्न।

भगवान् राम ने जब राज-तिलक का संवाद सुना तब उल्लास
प्रकट नहीं किया और वनवास का सन्देश मिला, तब भी उदास वे
न हुए!

साँगा भी दोनों अवस्थाओं में समान रहा।

लेकिन श्रवणमात्र से कि साँगा 'चक्रवर्ती सम्राट्' वन सकता है,
पृथ्वीराज और जयमल के वदन विकृत हो गए। उनके हृदयों में वैर
और विद्वेष की होलियाँ धू-धू कर सुलग उठीं!

भाई ही तो थे---

परन्तु भाई के भाग्य से ही उन्हें ईर्ष्या थी।

सहोदर से सहोदर द्वेष-द्वन्द्व रख रहा था।

एक ही वृक्ष के वृन्त, कट कर अलग हो गये थे और अब कुल्हाड़ी
के हत्ये वनकर वृक्ष की प्रत्येक शाखा को काट गिराना चाहते थे!

पृथ्वीराज और जयमल की यही गति थी।

या अवगति थी?

सारंगदेव, सूरजमल, संग्रामसिंह, पृथ्वीराज और जयमल अपने-
अपने आसन पर अविचल वैठे रहे।

आश्रम शंखनाद से गूँज उठा।

ब्रह्मचारी-गण उच्चस्वर से मन्त्रपाठ करने लगे। गौएँ रँभा
लगीं। ब्राह्मण-कन्याएँ इक्षुमधुर स्वर में प्रकाश और चेतना के गी
गाने लगीं।

इन सभी नादों, स्वरों और गीतों के ऊपर एक गभीर अनहद
उठ रहा था।

वह था पंडितराज मंगल महाराज का राजघोष!

सूरज के सातों घोड़े उस उद्‌घोष से चौंककर क्षिप्रगति से दौड़ रहे थे। और उन अश्वराजों से भी त्वरित, चपल गति से दौड़ रहा था पृथ्वीराज का मन !

वह सोच रहा था—

"मैं—अकेला मैं, मेदपाट का स्वामी कैसे बनूँ ? स्वर्ण-पिंजर में सारिका चहचहाई—

"अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वेः न दैन्यं न पलायनम् ।"

●

। जिसकी कुण्डली में होता है वह अवश्य चक्रवर्ती सम्राट् बनता
! ... आज इतना ही। मेरी यह आराधना की वेला है ...।"

इतना कहकर ज्योतिषी खड़ाऊँ खटखटाता भीतर चला गया।

साँगा के चेहरे पर एक ही भाव था--वह न प्रसन्न था, न अवसन्न।

भगवान् राम ने जब राज-तिलक का संवाद सुना तब उल्लास प्रकट नहीं किया और वनवास का सन्देश मिला, तब भी उदास वे न हुए!

साँगा भी दोनों अवस्थाओं में समान रहा।

लेकिन श्रवणमात्र से कि साँगा 'चक्रवर्ती सम्राट्' बन सकता है, पृथ्वीराज और जयमल के वदन विकृत हो गए। उनके हृदयों में वैर और विद्वेष की होलियाँ धू-धू कर सुलग उठीं!

भाई ही तो थे--

परन्तु भाई के भाग्य से ही उन्हें ईर्ष्या थी।

सहोदर से सहोदर द्वेष-द्वन्द्व रख रहा था।

एक ही वृक्ष के वृन्त, कट कर अलग हो गये थे और अब कुल्हाड़ी के हत्थे बनकर वृक्ष की प्रत्येक शाखा को काट गिराना चाहते थे!

पृथ्वीराज और जयमल की यही गति थी।

या अवगति थी?

सारंगदेव, सूरजमल, संग्रामसिंह, पृथ्वीराज और जयमल अपने अपने आसन पर अविचल बैठे रहे।

आश्रम शंखनाद से गूंज उठा।

ब्रह्मचारी-गण उच्चस्वर से मन्त्रपाठ करने लगे। गौएँ रँभाने लगीं। ब्राह्मण-कन्याएँ इक्षुमधुर स्वर में प्रकाश और चेतना के गीत गाने लगीं।

इन सभी नादों, स्वरों और गीतों के ऊपर एक गभीर अनहद नाद उठ रहा था।

वह था पंडितराज मंगल महाराज का राजघोष!

... : जय एकलिंग

विस्तीर्ण, प्रफुल्ल, रूपगर्विता आम्रवन-श्री आनन्द-उल्लास में मंजरिता; रस और रास के सम्मोहन गीत सुनेंगी! अपने ससुराल के हालचाल सुनकर कोकिलाएँ सबको हँसायेंगी। आम्रशाखाओं पर फुदक फुदक कर वे अपनी ननदों की नकल दिखाएँगी और सौतेली सासों की चाल-ढाल का अभिनय दर्शित करेंगी।

पूर्ण हरित आम्र-तरुओं के मेघ श्याम तन और गोलार्द्ध की प्रकीर्ण परिधि की ओट मे, सरोवर की पनिहारिनें, खाली कलश काली माटी पर एक ओर रख, अपने रमेश्वरों से मिल रही हैं। उन्होंने घुंघरुओं मे अभिनव द्रुमदल खोंस लिए हैं कि वे मुखर किसी से इस बात की कह न दें। आम्रवृक्ष के त्रिशूलाकार तन के सहारे, पीठ टिकाए, गोरी बाँहें विरोधिन शाखाओं तक फैलाए पनिहारिन मुक्त, बिखरी-बिसरी-सी खड़ी हैं। और उनके विशाल दूध भरे, परिपूर्ण पयोधरों को बढ़ती हुई साँसें उछाल रही हैं? जघाओं में थिरकन है। मन मे लोक का भय है। नयन में मिलन की लाज है और अधरों पर अमृत के अनन्त महासमुद्र अपनी छाप छोड़ रहे हैं! इन अधरों की रस-स्नात लाली को पिया के चुम्बनों ने अपने मे समा लिया है और इस अपराध मे पिया के अधरों पर कालिमा लग गई है (नयन-चुम्बन के फलस्वरूप)!

दोपहरियाँ ताल के दर्पण में देखती, केशराशि गूँथ रही हैं।

साँसें सोई है। नुपूर मौन हैं। पग स्थिर हैं अङ्ग-अङ्ग से जुड़े हैं। और अनन्तानन्द का अनादि रास तुमुलगति से चल रहा है परन्तु पत्त-छिन रुके बैठे हैं। रस की क्षिप्रता देखकर काल-समय अपनी चाल भूल गया है! और मूक द्रष्टा-सा अपने में बिसरा, खड़ा, देख रहा है! चपल ताल में, वाचाल सरोज बालाएँ वयसन्धि की लहरों को गिन रही है। यौवन-पराग अङ्ग-अङ्ग में फूट रहा है और मानस में मधुकरों के प्रति मान मचल रहा है, मुग्धाओं-सी मनःस्थिति मे हाय आज अपना समर्पण अपने ही लिए बोझ बन बैठा है!

सिपाही पहरा दे रहे थे। भीतर खेमे में कुमार मेदिनीराय सोया था। रूपराम और सेवकराम अभी-अभी आए थे। एकओर मुँह

लटकाए बैठे थे। स्वामी चूंकि विश्राम कर रहे थे, उनकी प्रतीक्षा करते, दो पल को उनींद्र थे, जगाना उचित नहीं था। भूषणमल्ल के दुःखद समाचार कौन सुनाए, इस प्रश्न पर दोनों सेवक परस्पर झगड़ रहे थे। एक दूसरे पर बिगड़ रहा था—

"आखिर भूषणमल्ल को तुमने बढ़ावा दिया सेवकरामजी, तुम्हीं अन्नदाता को अब अपना काला मुँह दिखाओ।" और इतना कहकर रूपराम लम्बी तान कर सो गया। कल शाम से वह भूखा था, अतः बात-बात पर चिढ़ रहा था।

सेवकराम ने लोटा और गमछा उठाया और सरोवर की ओर चला। कोई पचास कदम पर वटवृक्ष की घनी छाया में एक नन्हीं-सी कुँइया थी। उसके किनारे बड़ी-सी शिला थी। एकओर भैरवजी का चबूतरा था।

सेवकराम ने गमछे के छोर पर बँधी बूटी निकाली। सूखा मेवा और मसाला मिलाकर बड़ी शिला पर रगड़ा लगाया।

अपनी जटा बिखेरे, मन, वचन, कर्म से वह भङ्ग पीसने में तल्लीन था। भंग की गंध उसकी मानस-तरङ्ग को नूतन रङ्ग दे रही थी। अपने आपसे वह कह रहा था—

"अरे, नालायक सेवकराम! शिव और शक्ति में कोई अन्तर, कोई फर्क नहीं है। शक्ति हो और अशिव हो तो वह कल्याणकारी नहीं है। उसके संग शिव होना ही चाहिए। शिव के बिना शक्ति अकेली नहीं रह सकती। सेवकराम, उसका मन नहीं लगता! वह बेचैन रहती है? एकाकिनी वह संहार करती है, सबको भस्म कर देती है। शिव उसे अपने वस में रखता है। उस पर नियन्त्रण रखता है। उसके उद्दाम यौवन के विष को, सींच कर, अमृत बना देता है।··· वैसे तो भैया, शिव भी शक्ति के वियोग में शवमात्र है। कल्याण तभी हो सकता है, जब हमारे पास शक्ति हो। शक्तिहीन किसी का कल्याण नहीं कर सकते।····शक्ति तन की, मन की, धन की—आत्मिक और भौतिक व्यक्ति के शिव-संकल्प और शुभ-रचना के लिए जरूरी है। शिव और शक्ति का संयोग जरूरी है।····

"इसलिए कहता हूँ सेवकराम ! शक्ति और शिव, शंकरजी और पार्वतीजी दोनों भिन्न नहीं एक हैं।"

श्लोक गा कर, अपने में तन्मय वह, कथावाचक पण्डितों की नकल में कहने लगा—"सेवकरामजी के महादेवजी बोले कि हे देवी पार्वती तूने जैगीषव्य सिद्धेश्वर के विषय में जिज्ञासा प्रकट की, सो जानकर मैं प्रसन्न हुआ! अब सुन, मैं तुझे सक्षेप में सुनाता हूँ।" पार्वतीजी अपने सिर पर अंचल ढक कर श्रद्धापूर्वक सुनने लगी—

"प्रभासक्षेत्र में जैगीषव्य ने उग्र तप किया। एक सौ वर्ष तक उसने पवन पान कर, जीवन-निर्वाह किया। यों सौ वर्ष के पवन भोज के पश्चात् हज़ार वर्ष तक जल भोजी बना। इस कठिन साधना के उपरान्त दस हज़ार साल तक वह शाकाहारी रहा। इसके अलावा एक हज़ार चान्द्रायण और सान्तपन व्रत पूरे किए। फिर अल्पभोजी होकर अपने शरीर को सुखा डाला। अब तो वस्त्र त्याग कर, दिगम्बर रूप में रहने लगा। .

"हे पार्वति ! पूर्व कल्प में आप ही से उत्पन्न, देव-देव शिव का जो महादेव नामक लिंग था, उसकी स्थापना और पूजा करने लगा। निरन्तर भस्मशायी और भस्मवेष्टित अङ्गोंवाले जैगीषव्य ने अपने अभिराम नृत्यों और सुमधुर गीतों से भगवान् भोलेनाथ को रिझाया"....

इसके बाद, 'शिव शम्भु' की ललकार लगाकर, उछल कर वह नाचने लगा'-थेई, थेई-था था तत्-तत्-ताता ' हर-हर महादेव~~!"

झुरमुट से रूपराम दौड़ता हुआ आया—"यह क्या प्रलय मचा रखी है ? अन्नदाता जाग जाएँगे !"

सेवकराम सकपका गया। उसके मन को जोर का जैसे धक्का लगा। महाबूटी की सम्मोहनमयी आभा के आवेश में, वह नश्वर जगत् को भूल, अपने आप में एकाग्र, संलग्न था; रूपराम ने उस अगम उल्लास-लास की लहर को भंग कर दिया !

रूपराम को बिनवताए सेवकराम जाकर अपनी जड़ी की पिसाई में मग्न हो गया।

सा क्यों न करें कि उसे मुहम्मद की तरफ ही रहने को कहें और तीतरी तौर पर वह हमें सारी खबरें देता रहे!"—नगरश्रेष्ठि ने साहिब खाँ को सुझाया।

अब सूरजसिंह ने दूसरी उलझन पेश की—

"गुजरात के शाह मुजफ्फरशाह अगर आपके भाई, मुहम्मद सानी की मदद करना स्वीकार कर लें, तब तो गुजरात, खानदेश और दक्खन की मिलीजुली फौजों का मुकाबला हम नहीं कर सकेंगे।"

तब नगरश्रेष्ठि, जो सारे वार्तालाप के मध्य में बातों का उत्त देते हुए और बातें सुनते हुए किसी विशेष विचार में डूबे हुए थे। सहसा आँखें चमका कर कहने लगे—

"मेरी मानिए और मुहम्मद सानी को मेदिनीरायजी और महा-रानाजी की सहायता लेने दीजिए। इससे आप समझ सकते हैं, हमें क्या लाभ है? दिल्ली के लोदी, गुजरात के शाह और दक्खन के बादशाह हमारी तरफ आ जाएँगे। जनाबेमन् तब यह जंग साहिब खाँ और मुहम्मद सानी का बाहमी जंग न रहकर, हिंदुओं और मुसलमानों का, कभी खत्म न होने वाला जंग बन जाएगा।"

सूरजसिंह इस प्रस्ताव से सहमत था। उसने नगरश्रेष्ठि का अनु-मोदन करते हुए कहा—"हम अगर मुहम्मद सानी और महाराणा के बीच, फूट फैलाने में सफल हो गए, अथवा राजा की सेना देर से आए तो विश्वास रखिए गुजराती सेना के सामने मुहम्मद सानी की फौज टिक न पाएगी।"

"मुझे पूरा भरोसा है कि मैं गुजरात के शाह मुजफ्फरशाह को मालवा की हुकूमत का लालच देकर, इस बात पर रजामन्द कर लूँग कि वह मुहम्मद सानी और उसके हिंदू रहनुमाओं का साथ न दें इस तरह गुजरात के शाह का हमारी तरफ़ से लड़ना—अपने आप एक बहुत बड़ी ताकत बन जाएगी।" साहिब खाँ ने कहा।

इस पर जासूस सूरजसिंह ने नई बात सुझाई—"अगर गुजर के शाह मुजाफ्फरशाह हमारी मदद करना मंजूर न करें, तो हम उ

इस बात के लिए राजी कर लें कि वे मुहम्मद सानी की मदद करने से भी इन्कार कर दें। इस तरह मुहम्मद सानी का एक बाजू टूट जाएगा। रहा खानदेश और दक्खन का सवाल, सो उसके बारे में मेरा ये खयाल है कि गालिब खाँ मुहम्मदशानी की तरफ से खानदेश के खानों की मदद मागते रहें और मदद जब मिल जाए तब खानदेश की फौज को अच्छा खाना और सामान न दें—यह काम वे माण्डु के सूबा की हैसियत से बखूबी कर सकते हैं। और अगर इस काम में उन्हें सफलता मिली तो माण्डु के दरवाजे पर ही माण्डु की सेना और खानदेश की फौजो के बीच मे भारी खाई पड़ जायगी और तब हम आसानी से उन दोनो के बीच में आग भड़का सकेंगे।"

सूरजसिंह की बात सुनकर सबने एक स्वर मे कहा—
"वाह ! वाह !!"

गाहिब खाँ ने भी इस विचित्र प्रस्ताव का पूर्ण समर्थन किया और जोर से 'अल्-हम्दुलिल्लाह' कहकर अपनी खुशी जाहिर की—

"आलीजनाव, परवरदिगार की यही मर्जी है कि मालवा के शाही तख्त पर आपका यह दोस्त बैठे तो मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि कभी अपनी तलवार मियान में न रखूंगा।"

"यदि आपकी यही अभिलाषा है तो ईश्वर उसे पूर्ण करेगा।"

ब्राह्मण वेषधारी इसलाम खाँ ने कक्ष में प्रवेश किया। उसे देखकर साहिब खाँ ने, विस्मय से सूरजसिंह की ओर देखा। सूरजसिंह ने नगरश्रेष्ठि की ओर देखा। दोनो की विस्मय और प्रश्नसूचक मुख-मुद्रा देखकर श्रेष्ठि ने इसलाम खाँ को इशारा किया —

"वास्तव में रंगभवन के बम्हन मुसलमान हैं।" और वह हँसने लगा।

इसलाम खाँ ने अपना तिलक पोंछकर नकली मूँछें उतार फेंकी।

साहिब खाँ ने उसे देखते ही पहचान लिया और उठकर स्वागत किया—"वल्लाह, खाँ साहब, आप यहाँ-कहाँ ?"

"जनाब, उज्जैनी से दिल्ली दूर थोड़े ही है। जिस तरह उज्जैनी के साहिबखाँ से दिल्ली के लोदी दूर नहीं हैं।"

"वाह, वाह !" कहकर सूरजसिंह ने दोनों बड़ों की खुशामद की।

परिचारिका नागरी नगरश्रेष्ठि को बुलाकर एक उपकक्ष में ले गई। इस कक्ष में एक चर उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। चर के साथ उसकी संगिनी महिला चर भी थी।

बड़ी देर के बाद जब नगरश्रेष्ठि अपने चर को विदा कर, लौटे तब साहिब खाँ और अन्य साथी मदिरा के पात्र खाली कर चुके थे। एक गुर्जरी नर्तकी उनका मनोरंजन कर रही थी !

नगरश्रेष्ठि ने अपने आसन पर बैठते हुए कहा—"मित्रो, अभी-अभी मुझे ज्ञात हुआ है कि राजकुमार मेदिनीराय और वह पारसिक कन्या चित्तौड़ के मार्ग पर, एक दूसरे से बिछुड़ चुके हैं। बिछुड़ते वक्त दोनों के बीच जिन संवादों का आदान-प्रदान हुआ, वे सुनने के काबिल हैं। मेरे चर की संगिनी वारुणी ने स्वयं अपनी आँखों सब देखा है और अपने कानों सब सुना है।" कहते-कहते उन्होंने ताली बजाई।

नागरी आई।

"वारुणी को यहाँ लाओ।"

राजपूत परिवेश में सजी वारुणी रूप की पुतली प्रतीत होती थी ! उसे देखकर इसलाम खाँ का दिल अपने पहलू से निकलने लगा।

वारुणी का नाम सुनकर, माधुरी और वल्लभी भी वहाँ आ गई।

नगरश्रेष्ठि के आदेश पर वारुणी ने पारसिक रमणी का प्रकरण निवेदन किया !

: ११ :

शूद्रों के निकाय में आज बड़ा शोरगुल था। कान-पड़े कुछ सुनाई न दे रहा था। इस कुहराम को सुनकर अपने आश्रम में बैठे मङ्गल महाराज ने इतना ही कहा था—

"कुमार से कहो, चाडालों की इस चौकड़ी को चबूतरे चढ़ाकर चटनी बना दो।"

गाँव में कई बाहरी लोग भी आए थे। दूर मेवंशी, मादड़ी, मण्डल, महालो, बीभणा, वासोला और वालिया गाँवों से शूद्रों के ठट्ठ-के-ठट्ठ एकत्र हुए थे।

शूद्रों का मुखिया भीमा कुछ कम न था। हालाँकि आज उसके लड़के रामा की 'बरषी' थी फिर भी उसने भोजन-पान का प्रबन्ध इस प्रकार किया था, मानो आज उसके बेटे के ब्याह का दिन हो।

भीमा की दारा ने अपनी बहू के और स्वयं अपने आँसू पोंछते हुए भी कुछ ऐसा ही आशय प्रकट किया था—

"मत रो बहू, आज मेरे लाल की बरसी का दिन नहीं है। उसके ब्याह का दिन है। हरेक आदमी के दो विवाह होते हैं, एक तो पत्नी से, दूसरा मृत्यु से।"

सुनकर बहू रुका और ज़ोर से रो पड़ी।

सास बोली—

"नारी से विवाह करके पुरुष को जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी ही मृत्युरूपी सुन्दरी का वरण करके भी होनी चाहिए।"

तभी भीमा भीतर आ गया। अपनी पत्नी का कथन उसके कानों में पड़ गया। मानो घाव पर किसी ने लोन छिड़क दिया हो, दिल में दर्द उठा लेकिन मन मसोसकर, मर्द आदमी की तरह कहने लगा—

"रामा की मौत से मेरे पाँव तले की धरती खिसक गई है मगर मुझे लगता है, मैंने बहुत बड़ा मैदान मार लिया है। मेरा बेटा शहीद हो गया। अगर वह अपनी जान नहीं देता तो शिवजी के मस्तक के जटाजूट सूखे ही रह जाते और वहाँ जल का एक बिंदु भी नजर नहीं आता। मङ्गल महाराज स्नान कैसे करते ?"

"कुछ सुना है, सरोवर को सांमतराज सूरजमल खुदवाकर बड़ा और गहरा बनवा रहे हैं।"

"तो इससे क्या ? हम श्रमिकों को कुछ काम ही मिलेगा।"

राजो आ गई—

"तू तो राजो हर वक्त बुराई ढूंढती रहती है।"

"जिन बड़े कहलाने वाले लोगों ने मेरे भैया को दिन-दहाड़े मार डाला, हजारों लोगों की साक्षी में मारा, उन्हें यदि मैं बुरा कहूँ और उनमें बुराई देखूँ तो क्या अपराधिनी ही कही जाऊँगी ?"

"यह किस देश का विधान है ?" माँ ने बेटी का समर्थन किया।

भीमा ने अपनी बात नहीं छोड़ी, वह अपनी औरत के सामने अपनी हेठी कराना नहीं चाहता था—

"तूने राजो, कुमारों पर धूल फेंककर अच्छा नहीं किया।"

"मैंने धूल फेंकी ?" राजो ने सिर उठाया।

"तो क्या तेरी गालियों को फूल कहूँ ?" भीमा ने लाल-लाल आँखें निकालीं।

उसकी दारा ने उसे शांत करने के निमित्त कहा—

"लो, थोड़ा मद पी लो, इससे तुम्हारा जी अच्छा हो जाएगा।"

भीमा ने मिट्टी के मद-पात्र को मुँह से लगाने के पूर्व पत्नी से पूछा—

"रूपा को दिया है ?"

"हाँ, वह और राजो तो पूरा महापात्र पी चुकी हैं।"

भीमा खड़ा-खड़ा दो-तीन पात्र खाली कर गया। फिर जीभ से होंठों को चाटता हुआ कुटीर के बाहर चला गया।

राजो ने अपने हाथ का पात्र जोर से फेंका, वह मज्जा के उल्का-दीप पर जा लगा और दीपक बुझ गया। माँ ने अँधेरे में कहा—

"हाय राम! बुरा शकुन हुआ। रिखमनाथ रक्षा करें। आज जरूर कुछ-न-कुछ अमङ्गल होगा।" कहती राजो की माँ बाहर चली गई।

कुटिया के अँधेरे कोने में रूपा 'थेई-थेई' नाच रही थी।

बाहर पंचों के बीच बावला भीमा गरज रहा था—

"कौन कहता है, मेरे बेटे को ··सामंतों ने···मार डाला···सामंतों की क्या मजाल···वे भला किस खेत की मूली हैं···मेरा बेटा शहीद होगया···"

"वाह पटेल, वाह!" बिरादरी के, नशे में झूमते सदस्य चिल्लाए।

शूद्रों का ब्राह्मण-पुरोहित देवी के चौरे पर अज-पशु की बलि दे रहा था और भैरवजी का बड़ा भोपा अपने लम्बे-लम्बे बाल फैलाकर भाव में धुन रहा था। इसके एक हाथ में नंगी तलवार थी, जिसकी नोंक पर पीला निंबू और एक हरी मिर्च लगी थी। उसकी गोद में मद का पात्र औंधा पड़ा था और एक कुत्ता उसका एक कान चाट रहा था। कुत्ते के दाँतों से टकराने से कान का कुण्डल अजीब आवाज पैदा कर रहा था।

बड़े-बड़े ढोल, नगाड़े और बाजे बज रहे थे। चर्म और तन्तु के वाद्यमन्त्र विचित्र नादस्वर से वातावरण को मुखरित कर रहे थे। चारों ओर कर्णकटु कुहराम और कलरव फैला हुआ था। इस कुहराम, इस

भीड़, इस हलचल और इस मानव-मेले का कोई क्रम नहीं था। न तो इसके आदि का पता चलता था और न ही इसका अन्त नजर आता था।

भैरवजी के चौरे पर रूपा सोलह सिंगार किए आई। उसने गहरे लाल रंग की साड़ी पहनी थी। पीले रंग का घाघरा था और पीले रंग की उसकी कंचुकी थी। उसके केश—घने, लम्बे और काले केश खुले थे, राजो और सीता-जैसी लड़कियों ने मिलकर, इन केशों को कई तरह की सुगन्धियों से सँवार दिया था और माँग को कौड़ियों की मालाओं से सजा दिया था। उसकी कई चोटियाँ भी वराटिका की ऐसी ही लड़ियों से गुँथी थीं। उसकी कलाइयों पर कौड़ियों के गजरे भरे थे और गले में भी कौड़ियों के हार झूल रहे थे।

मद से रूपा के विशाल लोचन लाल थे। और उसके लाल-लाल अधर फड़क रहे थे। पुजारी ने उसके हाथ में नंगी तलवार थमा दी थी।

भैरवजी के सामने, आँगन में स्त्री-पुरुष मिलकर, ढोल के बोल पर नाचने लगे।

एक ओर भोजन बन रहा था—

उपलों की बड़ी-बड़ी अंगीठियों पर बाटियाँ सिक रही थीं। बड़े-बड़े चूल्हों पर दाल और चावल के महापात्र सुगन्धित वाष्प छोड़ रहे थे। भोजनभट्ट, महोदर भीमाजी तन्मय होकर, अपलक एक दृष्टि से इन पात्रों को देख रहे थे।

किसनाजी ने दाल को लोहे के कड़छुल से चलाते हुए कहा—

"भीमाजी, लोहे का बड़ा टोरा अंगारों के नीचे दबाओ। केशाजी से कहो कि बघार की तैयारी करें। पाव भर हींग, दो सेर जीरा, चार सेर घी, तीन सेर लहसुन और पाँच सेर प्याज मँगवा लो।"

केशाजी सुन रहा था हालांकि ऊँघ रहा था।

"किसनाजी, पाँच सेर प्याज की बात तो ठीक है मगर तीन सेर लहसुन कुछ ज्यादा होगी।

"ज्यादा ? मैं कहता हूँ कम होगी।"

"कम ? मैं कहता हूँ ज्यादा होगी।"

लोग, जो ऊँघ रहे थे, आँखें खोलकर, कान लगाकर इन्हे देखने और इनकी झड़प सुनने को उत्सुक हो गए।

केशाजी ने ताव में आकर दाँव लगाया—

"ज्यादा नही निकली तो क्या दोगे ?"

"दूँगे ? ..." और किसनाजी ने केशाजी को गाली दी।

केशाजी ने चूल्हे से एक जलती लकडी उठा ली और किसनाजी की ओर झपटा। किसनाजी ने दाल चलाने का गरम-गरम कड़छुल बाहर निकाला और उसे हवा में ऊँचा उठाया—

"वहीं रहना, वरना सिर फोड दूँगा।"

"फोड़ दिए ! कभी मटका भी फोड़ा था, जो सिर फोड़ने चले हो ?"

लोगों ने हँसकर, तालियां बजाकर, इन सम्वादो का स्वागत किया और दोनों पहलवानों को आगे बढने की प्रेरणा दी।

"मटके, नयापुरा वालो (केशाजी नयापुरा का रहने वाला था) के दरवाजे फोड़े हैं। यहाँ तो दुश्मन की विधवाओं की चूड़ियाँ फोड़ते हैं !"

"अपनी बहनों को राखी का यही बदला देते हो ?" केशाजी के प्रश्न पर श्रोता खिलखिला उठे। वह बड़ी देर से अँगीठी के निकट बैठा था। इसलिए उसके पूरे काले बदन पर पसीने की बूँदें उभर आई थी और सिर भी गरम हो गया था। कड़छुल उसने फेंका केशाजी सावधान था, वार बचा गया।

उसके पीछे एक व्यक्ति चादर तान कर सो रहा था। उसकी पसली से जाकर कड़छुल टकराया, वह हड़बड़ा कर उठ बैठा और चकित दृष्टि से चारोओर देखता हुआ इस अचानक आक्रमण का रहस्य जानने का प्रयास करने लगा।

केशाजी ने कहा—"वो रहे किसनाजी बाणासुर ! अपने आगे किसी को कुछ समझते ही नही !"

सुप्त व्यक्ति एक ही छलांग में उछला और जाकर किसनाजी से लिपट गया। कुछ ही पल में दोनों गुत्थमगुत्था होकर धरती पर लोटने लगे।

केशाजी ने अवसर देखा और वह किसनाजी के इधर-उधर लकड़ी से वार करता रहा।

इसी समय उसकी पीठ पर एक सनसनाता हुआ तीर लगा और वह 'हाय' कहकर नीचे गिरा।

तब तक तीरों और बाणों की बौछार से कई व्यक्ति धराशायी हो गए।

जलती हुई उल्काएँ बरसने लगीं।

हाँफता-दौड़ता एक सन्देशवाहक आया—

"हमारे झोंपड़े जल रहे हैं। किसी ने आग लगा दी है।"

फिर घोड़ों के टापों की आवाजें गूँजी।

दूसरा आया—साँस रोककर बोला—

"राजपुत्रों ने हम पर हमला कर दिया।"

"भागो""भागो""जल्दी भागो।" एक व्यक्ति पेड़ पर चढ़कर चिल्लाने लगा।

स्त्रियाँ, लड़कियाँ, बच्चे, बूढ़े, मद के नशे में चूर नौजवान, अतिथि और दर्शक, नर्तक और ढोली—सभी भागे।

—जिसे, जो दिशा और राह मिली, वह उसी ओर भागा।

सभी पृथ्वीराज की दुष्टता से परिचित थे। उसके अत्याचार जगजाहिर थे।

रङ्क हो या राजा, वह किसी को फूटी आँख न सुहाता था। ऐसा कोई न था, जिस पर उसका जुल्म न बरसा हो। ऐसा एक न था, जिसकी पीठ पर उसके अनाचार की काली कहानी कोड़ों की कलम से न लिखी गई हो!

शूद्र-निकाय ज्वालाओं में जगमग जल रहा था।

ज्वालाओं की लम्बी-लम्बी लपटों का उजाला देखकर, मंगल पंडित ने अपने शिष्यों से कहा—

"बादल मँढने से नीम नहीं छिपता !"

"समाधान गुरुदेव ! कुछ समझे नहीं हम !"

"वत्स, कुस्वभाव नहीं छिपता, उसे चाहे ऊपरी लेपन से कितना ही छिपाओ ।"

"धन्य, गुरुदेव !"

"कुमार पृथ्वीराज के संस्कार शूद्र के हैं, चाहे वह वीरवंश में, वीर पिता के प्रासाद मे उत्पन्न हुआ हो । और शूद्रों के सेवक विप्रराज के सम्पर्क में रहने से चमारों की बेटी राजवंसी को ब्राह्मणों के सस्कार मिले हैं । वत्स, विद्या और सस्कार, उत्तम गुण और कर्म किसी की बपौती नहीं हैं । इन्हें जो धारण करता है, वही धर्मपुत्र और धर्मात्मा कहा जाता है ।"

"तब तो गुरुदेव, क्षमा करें, जाति और वर्ण, शरीर और आत्मा का भेद भी नही रह जाएगा ?"

"भ्रम है तुम्हारा । काले शरीर वाले की, क्या आत्मा भी काली होती है ? गौर देहधारी की, क्या आत्मा भी गौर होती है ? तुम आत्मा की महिमा के गीत-गायक हो या शरीर के चारण हो ? आत्मा का रंग देखो, शरीर का नही ।"

"फिर भी देव, देह की सुन्दरता का अपना महत्त्व तो है ही ।"

"देह की सुन्दरता ! यह आत्मिक नही, भौतिक दृष्टि है । तुम्ही बताओ, उस सुन्दरता और काया का क्या मोल, जो शरीर के जल जाने पर काली पड़ जाती है ? सड़ने पर दुर्गंध फैलाती है । कोढ़ी हो जाने पर सफेद धब्बों से भर जाती है । विषैली जन्तु के डँसने पर काली-नीली पड़ जाती है । पीत-रोग और मृत्यु के उपरांत पीली पड़ जाती है !"

"इसका तात्पर्य यह है गुरुदेव, जाति-परिवर्तन सम्भव है ?"

“अवश्य,” मंगल पण्डित ने उच्चस्वर में कहा—

“जाति और वर्ण परिवर्तनशील हैं। कर्म के अनुसार व्यक्ति शूद्र ब्राह्मण, ब्राह्मण से शूद्र या क्षत्रिय, क्षत्रिय से शूद्र बनता है, यह सब म्भव है, क्योंकि मानवकृत है, कर्मरत है।”

“धन्य, गुरुदेव, धन्य!”

“वत्स, एक सूत्र सदैव स्मरण रखो—मनुष्य की कोई जाति नहीं। उसकी एक ही जाति है—महान् मानव-जाति। इस संसार में ‘मनुष्य’ एक विराट् सत्य है। और इस सत्य से बढ़कर कोई सत्य नहीं है। इसलिए, उठो मनुष्य की पूजा करो! मानव-मात्र की सेवा करो।”

और इस कथन के साथ ही मंगल पण्डित ने शूद्र-विकाय की ओर संकेत किया—

“धू-धू करती उन सर्वभक्षी ज्वालाओं को, बेटा, अपने आँसुओं से बुझा दो! यही प्रभु का आदेश है। यही ब्राह्मण-धर्म है।”

शिष्यों का समुदाय ‘शूद्र-निकाय’ की ओर दौड़ा। पीछे-पीछे गौरी मंगलपुत्री दौड़ी।

ज्वालाओं के निकट अश्वारोहियों का क्रूर, मारक अट्टहास उठ रहा था।

रूपा अभी भी भैरव-चौरे पर बैठी थी।

उसकी आँखों से लाल-लाल लहू बरस रहा था। तलवार उठाकर वह राजकुमार पृथ्वीराज के लौटते हुए घोड़े के पीछे दौड़ी—

“ठहर आततायी!”

“खमा मातेसरी, घणी खम्मा!” चिल्लाती हुई गौरी रूपा पीछे-पीछे गई।

वनान्तर से समूह-गीत की भाँति एक करुण स्वर उठ रहा था—

“हाय रामा हो····हाय रामा हो!”

: १२ :

एक ही दिन मे दो-दो दुर्घटनाएँ हो गईं।

पृथ्वीराज ने शूद्रों के निकाय में आग लगवा दी। उनके सभी आवास जल गए। कल जो कुटीर नन्हे शिशुओं की किलकारियों से मुखरित थे, आज उनमे शृगालों की 'हुआ-हुआ' उठ रही थी। मानो 'अत्याचार हुआ' इस सचाई की साक्षी सियार भी 'हुआ-हुआ' कहकर दे रहे थे !

शूद्र-निकाय के अग्निकाण्ड से यह अग्नियावैताल शान्त भी न हुआ था कि जाकर उसने और जयमल ने साँगा को घेर लिया।

मारगदेव पीछे आ रहा था, उसने देख लिया—

"पृथ्वीराज की चाल-ढाल ठीक नहीं है। वह साँगा को हानि पहुँचाना चाहता है।"

पृथ्वीराज ने साँगा पर तलवार का वार करते हुए ललकार लगाई—

"जयमल, आज इसको मारकर मैं जोदी बम्मन की वानी झुठला दूँगा।"

"मैं प्रस्तुत हूँ।"

इच्छा न होते हुए भी साँगा ने तलवार म्यान से बाहर निकाली। पलभर में उसने पृथ्वीराज के वार को लौटा दिया। जयमल ने पीठ

पर वार किया। सारंगदेव बीच में आ गया। अब तो चार-चार तलवारें बिजलियों की तरह चमककर आपस में टकराने लगीं।

मेवाड़ का भाग्यदेवता भाई को भाई से जूझते देखकर उदास हो गया और भाग्यदेवी की चूड़ियाँ तड़कने लगीं।

जयमल का भीषण प्रहार अपनी ढाल पर झेलते हुए सारंगदेव ने उससे आग्रह किया :–

"बेटा, मेरी बात मानो। भाई से भाई की घृणा और भाई से भाई का युद्ध राजपूतों को सदा के लिए समाप्त कर देगा।"

"दादाजी, आप हमारे पिताजी के काकाजी हैं, इस हेतु आपकी बात नहीं टाल सकते और चूंकि आप साँगा के पक्षपाती हैं, आपकी बात नहीं मान सकते।"

"यदि मैं साँगा के पक्ष की बात कहूँ, तब तुम, भले मेरी बात मत मानो, किन्तु यदि मैं यह कहूँ कि भाई-भाई की परस्पर की लड़ाई उचित नहीं है तो तुम मुझे साँगा के पक्षपात का दोषी नहीं ठहरा सकते।"

जयमल ने तलवार म्यान में रख ली।

साँगा और पृथ्वीराज भूखे शेरों की तरह लड़ रहे थे, परन्तु पृथ्वीराज के प्रत्येक प्रहार को साँगा सावधानी से रोक रहा था। फिर भी दोनों के शरीर पर कई घाव बन गए थे।

इन घावों में और इनसे बहती रक्त की रेखाओं में सारंगदेव जैसे कुशल राजनीतिज्ञ ने सम्पूर्ण मेवाड़ के विनाश की काली कहानी लिखी हुई देखी। उसने चिल्लाकर कहा––

"बेटा पृथ्वीराज, रावण और विभीषण; बालि और सुग्रीव के बन्धु-बैर की कथाएँ भूल गए हो ? अरे, नहीं जानते तुम्हारे एक-दूसरे को मिटाने के प्रण से मेवाड़ मिट जाएगा। मैं कहता हूँ, इस असि-द्वन्द्व का अन्त हो। कुमारो ! तुम्हें मेवाड़ माता की शपथ।"

सुनते ही साँगा ने तलवार झुका दी, लेकिन पृथ्वीराज की सीधी बढ़ती हुई तलवार साँगा की आँख में घुस गई। सदा के लिए साँगा काना हो गया।

मारंगदेव ने उसे सहारा दिया और उसके घोड़े की रास पकड़ ली और धीमे-धीमे उसे लेकर एक ओर चला गया !

अब पृथ्वीराज और जयमल एक टूटे हुए उथले कुएँ के थाले पर आ बैठे और आगे की समस्याओं पर विचार करने लगे।

अचानक उन्होंने कुएँ से निकलती हुई एक स्त्री-छाया देखी। उसका रौद्ररूप अत्यन्त भयावह था। जयमल तो उसे देखकर डर गया। पृथ्वीराज ने तलवार बाहर खींच ली।

उस स्त्री-छाया की सघन केशराशि, उसके मुख पर छाई हुई थी अतः दोनों कुमार उसे पहचान न पाए, परन्तु वह रूपा थी। उसने बड़ी कठोर और तीक्ष्ण आवाज में कहा—

"भाई को मारकर राज्य चाहने वाले लालची पृथ्वीराज, मैं तुझे शाप देती हूँ कि जिस तरह मेरे पति की मृत्यु हुई, उस तरह, किन्तु उसके विपरीत पतित रूप में तेरी मृत्यु और तेरा पतन होगा। जहर पिलाने वाले, तू जहर पीकर मरेगा। मौत देने वाले, तू मौत लेकर मरेगा ! तेरा सत्यानाश जाए, यदि मैं सती हूँ तो मेरा 'सत्' सत्य साबित होगा।"

इतना कहकर, वह छाया उलटे पैरों कुएँ में उतर गई, किन्तु उसका कथन बड़ी देर तक कुमारों के कानों में गूँजता रहा।

पृथ्वीराज आज पहली बार सशङ्कित, भयभीत हुआ।

जयमल ने उसे, उठकर; चलने का संकेत दिया। दोनों सिर झुकाए, मुँह लटकाए, तलवारें म्यान में रखे, उस पेड़ के पास में आए, जिससे दोनों के घोड़े बँधे थे।

जयमल घोड़े पर बैठ गया। पृथ्वीराज ने रुकते हुए कहा—

"चांडालिन और सती !" उसने तलवार खींच ली।

"जयमल, मैं इस शूद्रा को यहीं समाप्त कर दूँगा।"

"दादा, तिरिया पर, अबला पर हाथ उठाओगे ?" जयमल ने समझाया।

कुएँ से आवाज आई—

"उठाने दे जयमल, इसे अबला पर तलवार उठाने दे। मेवाड़
। यह शूरवीर अबला को न मारेगा तो क्या सबला को मारेगा ?
अरे, तू मुझे मारने से पहले मर जाएगा। इधर आकर तो देख।"

जयमल ने पृथ्वीराज का हाथ पकड़ लिया—

"दादा, मेरी बात मानो, यह रघुकुल की रीत नहीं है। मर्यादा का उल्लंघन मत करो।"

क्षुब्ध पृथ्वीराज अपने घोड़े पर सवार हो गया। दोनों लौट गए।

महाराणा रायमल ने रात्रि में भोजन की वेला जब छोटे राजकुमार साँगा को अनुपस्थित देखा तो उन्होंने पूछा—

"भाईजी, आज साँगा नजर नहीं आता ? वह कहाँ रह गया है ?"

"अन्नदाता !" राणा के भाई सूरजमल ने उत्तर दिया—"मैं यदि कुछ कहूँगा, तो कुमार पृथ्वीराज मुझे साँगा के पक्षपात का दोष देंगे, किन्तु मेरे लिए तो दोनों कुमार दोनों आँखों के तारे हैं।"

"भाईजी, अवश्य आप हमें सारे समाचार सुनाइए। हम चाहते हैं कि आप उसकी बातों पर ध्यान न दें और आपका सम्मान-अपमान आपकी शूर-वीरता पर निर्भर है, किसी की दया पर नहीं।" महाराणा ने अत्यन्त मधुर और विनम्र वाणी में अपने भाई को समझाया।

महाराणा के आदेश पर सूरजमल ने सारी घटनाएँ संक्षेप में क
सुनाईं, लेकिन अन्त में महाराणा ने वही प्रश्न दोहराया—

"साँगा कहाँ है ?"

सूरजमल बोला—

"अन्नदाता, कुमार साँगा की एक आँख चली गई है और शरी
घावों से खून बहने के कारण, वे काफी कमज़ोर होगए हैं, इ
हमारे पूज्य काकाजी सारंगदेवजी ने उनका तात्कालिक उपचार
और आवश्यक समझा और उन्हें घटनास्थल के समीप ही अ
गाँव में ले गए।"

"सारंगदेवजी बड़े उपकारी हैं। मन्त्रीजी, आज के एक
के द्वारा सारंगदेवजी को मेवाड़ राज्य की ओर से आभार-प

जाए और किसी को भेजकर कुमार संग्राम की कुशल-क्षेम पूछी जाय।"

"जो आज्ञा, अन्नदाता।"

ब्राह्मणों ने 'अन्नं ब्रह्म' के मन्त्रों की आघोषणा आरम्भ की किन्तु महाराणा ने उन्हें हाथ के सकेत से रोक दिया और वे थाली पर से उठ खड़े हुए।

महाराणा ने उपस्थित-मण्डली के समक्ष ही कुमार पृथ्वीराज को बहुत बुरा-भला कहा और उसे भावी युवराज-पद से सदा के लिए वंचित करने को प्रस्तुत हो गए, परन्तु मन्त्रियो ने प्रतिवेदन किया—

"अन्नदाता, कुमार बालक हैं। बाल्यकाल के उनके अपराध का दण्ड ऐसा न दिया जाए कि युवा और प्रौढकाल भी दण्डित हो जाय। सदा के लिए उनकी सन्तान भी पदच्युत और भाग्यहीन हो जाए।"

महाराणा शान्त हुए।

अभी उन्हें शूद्र-निकाय के ध्वस की सूचनाएं नहीं मिली थी, अन्यथा उनका दोष और भी बढ जाता। वे पुनः अशान्त हो जाते।

सारंगदेव ने साँगा की चिकित्सा मे कोई कसर न रखी। उसके सभी परिवारी-जन एक सांगा की ही सेवा-सुश्रूषा मे लगे थे। बीच-बीच में काकाजी सूरजमल भी उसे देखने चले आते। उनके आने पर सारङ्गदेव के महल में राजनेताओ की मानो एक समिति ही जुड़ जाती। उत्तर में होने वाले विदेशी आक्रमणों से देश की रक्षा के उपाय सोचे जाते।

साँगा और सूरजमल की नीति तटस्थता की थी। वे मुसलमानों से मेलजोल रखना चाहते थे और प्रायः कहते थे—

"मुसलमान भी इस देश के निवासी हैं, इसी भूमि पर उनका भी जन्म हुआ है। वे हमारे अपने अंश है; अग हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों की सम्मिलित शक्ति ही विदेशी हमलावरों से देश की रक्षा कर सकती है।"

सूरजमल राष्ट्रीय एकता और सगठन पर जोर देते थे—

"काकाजी, यह देश आज तक किसी विदेशी वैरी आक्रमणकारी

से नहीं हारा। अभी तक इस धरती पर, माँ का कोई ऐसा लाल पैदा नहीं हुआ जो भारतवर्ष पर आक्रमण कर उसे पराजित करने में सफल मनोरथ हुआ हो। अभी भी राम और कृष्ण की; महावीर और गौतमबुद्ध की जन्मभूमि अपराजेय है।"

साँगा प्रश्न करता—

"क्षमा करें, काकाजी, हम अलिकसुन्दर से हारे। हूणों और यवनों ने हम पर आक्रमण किये और हमें पराजय के दुर्दिन दिखलाए। मङ्गोल और तातार आए। बाहर बाहरी लोग निरन्तर आते रहे और हमें पददलित करते रहे। इतिहास की ये इतनी और अनेक गाथाएँ क्या पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं कि हम पराजित हुए और अनेक बार पराजित हुए वरन् यों कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा कि हमने किसी भी युद्ध में विजय नहीं पाई।"

"वत्स," सूरजमल की बड़ी-बड़ी आँखें आक्रोश से लाल हो जातीं— "यह तुम्हारी रुग्णावस्था ही उत्तरदायी है कि तुममें ऐसी पराभूत मनोवृत्ति का उदय हुआ। मैं इतिहास के सत्यों को अस्वीकार नहीं करता। हम हारे—इस सचाई से मैं इन्कार नहीं करता, परन्तु वत्स, तुमने कभी उन पराजयों और हारों के कारणों पर विचार किया है?"।

"नहीं, काकाजी।" सहम कर, साँगा कहता।

"तो सुनो, हमारी हार हमारी फूट और अनेकता के कारण हुई। हमें बाहरी शत्रु ने इसलिए नहीं हराया कि हम कायर या कमजोर थे, वरन् इसलिए हराया कि हमारे अपने ही भाई, हमारे अपने ही देशवासी हमारे शत्रु का; बाह्य-आक्रमणकारी का साथ दे रहे थे, उसे घर का भेद बता रहे थे। और यह तो दुनिया जानती है कि जिस घर का भेद उजागर हो जाता है, वह विनष्ट हो जाता है। जब घर का यह हाल है तो पूरे देश की बात ही और। बेटा, जब-जब हम हारे अपने ही आदमियों से हारे!"

"मैं आपका दृष्टिकोण स्वीकार करता हूँ काकाजी, प्रथमतः हम अपने-आपसे पराजित हुए, फिर बाह्य शत्रु हमें पराजित कर सका।

इसका तात्पर्य यह निकला कि यदि हम अपने आपमें संगठित हैं, तो अवश्यमेव अपराजिय हैं। पहले हम अपने आप पर विजय प्राप्त करलें, फिर वैरी पर विजय पाना अत्यन्त सरल हो जाएगा।"

"धन्य वत्स !" सारङ्गदेव कहते।

"किन्तु काकाजी, हमारे पूर्वज चाहते तो आक्रमणकारी वैरी के विरुद्ध; एक या दूसरी शक्ति से सहायता लेकर, विजय का वरण करते।"

सूरजमल कहते-कहते नहीं, प्रश्न करते—

"तुम्हारा तात्पर्य है—वैरी को अपना घर दिखाते ? कहते हैं; ज्वर ने डेरा देख लिया। जो शक्तिहीन है, वह चाहे प्रलयङ्कर महाकाल की भी सहायता ले, कदापि शक्तिशाली नहीं हो सकता। और वत्स, एक से दूसरी शक्ति में अन्तर क्या है ? आज इसका लोभ बलवान है, इसका स्वार्थ सजग है, इसने अपने अनुचर को उत्तेजित कर हमारे विरुद्ध खड़ा कर दिया। हम पर आक्रमण हुआ। इस प्रकार कल दूसरी शक्ति भी अपना स्वार्थ संकट में देखकर; 'असत्य' को सहयोग देने की हमारी अस्वीकृति देखकर; हम पर आक्रमण कर सकती है ! तब इन शक्तियों की मैत्री का मोल क्या, सपूत ! और हम शक्तियों के खेमों में दास बनकर क्यों रहें ? हम स्वयं शक्तिनियता और अनन्त शक्ति के स्रोत हैं, क्या तुम्हें वेदों के ऐसे विजयगीतों का स्मरण नहीं ?"

सारङ्गदेव अपने भतीजे के कथन को बढ़ावा देते —

"और विदेशी शक्ति के अपने भी शत्रु होंगे अवश्य। एक बार जहाँ हमने सहयोग के लिए प्रार्थना की, वह हम पर छा जायेगी हमारी सुरक्षा के बहाने। भाग्यशालिनी भूमि पर अपना डेरा डालेगी, अपनी सेनाएँ रखेगी और अपने शस्त्रास्त्रों की रखवाली का भार हमें सौंपकर स्वयं चैन की नींद सोएगी। तुम्हीं बताओ, ऐसे सस्ते सेवक अन्यत्र कहाँ मिलेंगे ?"

"काकाजी अपनी तटस्थता ही हमारे लिए हितकर है।"

उन दिनों सारङ्गदेव के यहाँ बूंदी के हाड़ाराव सूरजमल के साथ उसकी वहन कर्मवती भी आई हुई थी। कर्मवती साँगा की वीरता और धीरता की कहानियाँ सुनकर वहुत प्रभावित हुई थी। स्वयं उसके पिता हाड़ाराव के यहाँ वीरों और वीरता का अभाव नहीं था। समूचे इस देश में हाड़ाओं की हठ, उनकी युद्धप्रियता और स्वाभिमानी प्रकृति प्रसिद्ध रही है। राजकुमारी कर्मवती में ये तीनों ही विशेपताएँ विद्यमान थीं। उसमें सती पार्वती का हठ था, जब उसने शङ्कर को पतिरूप में प्राप्त करने के निमित्त प्रवल तप किया था। अनाचारियों और पापियों के प्रतिकूल कर्मवती चण्डी और भवानी थी। सिंहवाहिनी दुर्गा के समान हाथ में तलवार धारणकर, उसने अपने भाई राव सूरजमल का रणाङ्गणों में साथ दिया था। यह कर्मवती की अभिमानिनी प्रकृति ही थी कि वूंदी का छोटा-सा राज्य अव भी विदेशी यवनों का दास वनने से वचा हुआ था। इस प्रकार वूंदी की रचना में कर्मवती का त्याग था। और कर्मवती के निर्माण में वूँदी का योग था।

साँगा को कर्मवती का सामीप्य सुहाता। वह वहुत भोला तरुण था और मानव-जीवन में काल और परिस्थितियों के वात्याचक्रों के कारण उपस्थित होने वाले करालमुख छल, विद्वेप, प्रपंच और पाखण्ड से उसका परिचय नहीं हुआ था।

शायद साँगा का यह परिचय, उसके स्वभाव का यह अभाव ही कर्मवती के आकर्पण का आधार था।

परन्तु अभी न साँगा ने, न कर्मवती ने ही इस सम्वन्ध में साँस ही ली थी। दोनों एक-दूसरे को चाहते हैं—यह दोनों को मालूम था। साँगा की मन की वात कर्मवती से छिपी हुई नहीं थी और कर्मवती क्या सोचती है, इससे साँगा अनजान न था।

फिर भी दोनों चुप थे। दोनों मौन थे।

कर्मवती जानती थी कि मेवाड़ के राजसिंहासन को लेकर तेरह भाइयों के वीच जो असन्तोप उभर उठा है, वह किसी के दवाए न

दवेगा। साँगा चाहे जितना त्याग करे, प्रयत्न करे और अपने ही भाइयों के प्रघातक प्रहार और तीव्र तिरस्कार सहे, भाई-भाई आपस में लड़कर ही चैन लेंगे। एक कर्मवती ही नहीं, मेवाड़ के सभी हितैषी और परिवार के निकट आत्मीय, महारावत सूरजमल, सारङ्गदेव अज्जावत और राव सूरजमल इस सत्य से परिचित थे। और उनके अति समर्थ और बलवान कलेजे भी राजगद्दी के लिए होने वाले भावी गृह-कलह की काली कल्पना से काँप-काँप जाते थे !

हाड़ी राजकुमारी कर्मवती भी कभी-कभी ऐसी ही कल्पना करती और उसका अबोध कुँआरा मन कम्पित हो उठता। अपने चारों ओर देखती-सी वह उदास हो जाती और अपनी उदासी का कारण बहुत पूछने वाली सहेलियों को भी नहीं बताती।

वैसे सहेलियों से साँगा के प्रति कर्मवती की कोमल कामनाएँ सर्वथा अजानी नहीं थीं। अनबोली प्रीति अप्रकट नहीं रहती और प्रेमीजन भी, क्या आप-अपने से छिप सकता है ? लोक-दुनियाँ से वह भले अपना अन्तर्वाह्य छिपा ले परन्तु अपने अन्तर से उसका बाह्य और अपने बाह्य से उसका अन्तर छिप नहीं सकता।

कर्मवती जानती थी कि साँगा सुदिन की राह देख रहा है तो यही इच्छा है कि वह स्वयं भी साँगा की इच्छाओं में अपनी इच्छाओं का बिलयन कर दे और उसी सुदिन की प्रतीक्षा करे।

उसे मङ्गल महाराज की आगम वाणी में भी विश्वास था। वह जानती थी कि एक दिन उसका स्वप्न सत्य सिद्ध होगा और उसका 'संग्राम' मेवाड़ का परम प्रतापी महाराणा बनेगा।

सारंगदेव और सूरजमल ने साँगा से यह रहस्य छिपाकर ही रखा था कि पृथ्वीराज और जयमल उन्हें परेशान कर रहे हैं; क्योंकि उन्होंने साँगा के घावों का उपचार करवाया, उसकी रक्षा की और उसे शरण दी। उन दोनों ने इस भय से साँगा के सम्मुख रहस्य प्रकट नहीं किया कि कहीं साँगा को सबकुछ विदित हो जाएगा तो वह गाँव छोड़कर चला जाएगा और इस प्रकार दोनों, शरणागत की रक्षा

के धर्म से, वंचित हो जाएँगे, लेकिन कर्मवती को उन्होंने सब कुछ बतला दिया था और वह बिल्ली की तरह नङ्गी तलवार लिए साक्षात् भवानी की भाँति अँधेरी रातों में, घावों की पीड़ा भूलकर सोये हुए सांगा के प्रकोष्ठ पर पहरा देती।

प्रेम की इस प्रत्यक्ष प्रतिमा के पहरे में सांगा सतत् सुरक्षित था।

दिन बीत रहे थे। अनदेखे, अनजाने, अनबूझे एक नन्हा-सा प्यारा बीज उस सुकुमारी राजकन्या के हृदय में धीमे-धीमे अंकुरित हो रहा था, जो एक दिन भावी भारत की साम्राजी बनने वाली थी।

और सारंगदेव के गाँव में, कर्म के कण-कण जोड़कर, वह राजकन्या अपने भाग्य का निर्माण स्वयं ही कर रही थी।

इसीलिए लोग उसे कर्मवती कहते !

●

: १३ :

रूपराम लौटकर जब स्वामी के डेरे तक आया 'तीन चार यात्री बाहर बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी वेशभूषा और आकृति के वर्ण से विदित था कि वे विदेशी यात्री हैं।

रूपराम ने उन्हें देखकर मन ही मन कहा—"अभी-अभी तो अन्नदाता ने अचेरी के दुर्ग में पुर्तगाली जासूस को पकड़ कर पहरे में बिठाया है। अब ये नये शिकार कहाँ से आ फँसे ! स्वामी हमारे ऐसे कुशल और भाग्यशाली शिकारी हैं कि शिकार स्वयं उनके पास चला आता है। सघन वनान्तर के क्षुब्ध पशुपति केसरी के समान जब वे दहाड़ कर इन्हें देखेंगे, तब इन्हें दिन में ही तारे नजर आएँगे। रूपराम पछताया, सेवक पीछे रह गया, अपनी भंग में डूबा, वरना, वह भी अगर साथ रहता तो स्वामी की सिंह-गर्जना सुन कर अहोभाग्य मानता ········ लेकिन, अजब; गजब की बात है : स्वामी को इन विदेशी फिरंगियों की चालें कैसे मालूम हो जाती हैं !

परिचरिका सोने की झारी से जल उँड़ेल रही थी। कुमार हाथ-मुँह धो रहे थे। भावी दृश्य की रोचकता के प्रलोभन को न रोक सका तो, सेवकराम स्वयं ही आगे बढ़ा और उसने कुमार से निवेदन किया—

"मालवपति महाराजकुमार की जय हो !"

कुमार ने सिर्फ़ उसकी ओर देखा।

"अन्नदाता ! कुछ विदेशी फिरंगी श्रीमान् के दर्शनों के अभिलाषी हैं। देवद्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"अच्छा ! उन्हें सादर लिवा लाओ।" उसी समय उन्हें अपने विश्वस्त चरों के संवादों का स्मरण हुआ !

रूपराम विदेशी फिरंगियों को भीतर लाया।

भीतर प्रविष्ट होते ही फिरंगी राजकीय वितान के वैभव को देख कर विस्मित रह गए। स्पष्टतया उनकी आँखें फटी रह गईं ! फिर उन्होंने बार-बार झुककर अभिवादन किया और बाँस की एक खूबसूरत टोकरी में कुछ फल-फूल कुमार को भेंट किए। उनमें एक जो काफ़ी बूढ़ा था, बोला—"महाराजकुमार की जय ! बड़े-बड़े स्वप्न लेकर अपनी मातृभूमि से हमने प्रस्थान किया था। किन्तु भाग्य ने साथ न दिया महाराज ! इसलिए यह छोटे-छोटे फल-फूल स्वीकार कीजिए।"

"कितने सुन्दर सुगन्धमय पुष्प हैं ये ! ....रूपराम इन्हें हमारी शैया के निकट रख दो ! ....अतिथिजन, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?" राजकुमार ने मधुर, विनम्र स्वर में पूछा।

प्रेम, विनय, करुणा और माधुर्यमयी इस वाणी को सुनकर बूढ़े की आँखें भर आईं। जैसे वर्षों से वह प्यासा है और किसी शान्त सरोवर के सुधोपम जल और तट की छायामय वनराजि की शरण में भटक रहा है—"स्वामि ! हम तीन फ्रांसीसी यात्री हैं और यह एक रूसी नागरिक है। यह इतिहासकार है और मेरे इन दो मित्रों में-से एक नाविक है और एक यंत्रकार।"

"और आप ?" कुमार ने पूछा। उनकी आवाज़ से लगता था [illegible] वृद्ध अतिथि से प्रभावित हैं।

रूसी, जो कि इतिहासकार था, बोला -"महाराज, क्षमा करें ये सज्जन इतने नम्र हैं कि अपने मुँह अपना परिचय दे न सकेंगे ये हमारे दल के नेता और फ्रांस के प्रसिद्ध गीतकार हैं। शौर्य [illegible] धैर्य के, प्रेम और बलिदान के, युद्ध और शांति के इनके गीत [illegible] ओजस्वी हैं। हमारे देश के राजा ग्यारहवें के 'कोर्ट-बार्ड रह चुके हैं

"तो आप चारणराज हैं।" राजकुमार तुरन्त खड़े हो गए—"शिव .. शिव ! क्षमा करें हमें मालूम न था। हमारे देश की धर्म-परम्परा के अनुसार क्षत्रिय और राजा चारणकवि की अभ्यर्थना करके कृतार्थ होता है। हमें आपके दर्शन से अमित आनन्द हुआ चारणराज !"

और राजकुमार ने फ्रांसीसी चारण को दोनों हाथों का सहारा देकर अपने आसन पर अपने पास बिठाया—

"कहिए, कविदेव, यात्रा आपकी सानंद सम्पन्न हुई, कष्ट तो नहीं हुआ।"

"युवराज ! प्रभु ईसामसीह आपको कीर्ति, शांति और विजय प्रदान करे ! भला, भारतभूमि में किसे, कुछ कष्ट हो सकता है।" और फिर से, सफेद भौहोंवाली अपनी आँखें वह पोंछने लगा। गद्गद् कण्ठ से बोला—'राजन् ! हमने पुर्तगाल में कीर्ति-कथाएँ सुनी थीं। देवभूमि के दर्शन की कामना न रोक सके तो पुर्तगालियों के एक जहाज़ पर सवार होकर चल पड़े। बीच में दो साथी और मिल गए। मेरी यात्रा का समाचार सुनकर लुई बादशाह ने हिन्दू-सूर्य के नवाजने के लिए बहुमूल्य उपहार और स्नेह-संदेश भेजा था किन्तु राह में हमारे ही पड़ोसी, हमारे ही द्वीप के हमारे ही पुर्तगालियों ने सब कुछ छीन लिया और अनेक प्रकार के कष्ट हमें पहुँचाए। जैसे-तैसे प्रभु का नाम जपते ......" वृद्ध का गला रुँध गया। राजकुमार ने स्वयं अपने हाथों उठाकर जल-पात्र उन्हें दिया, सेवक दौड़े और चारणराज को सहारा दिया।

जल पीकर कविवर कहने लगा—

"कुमार की जय हो ! प्रभु का नाम सुमरन करते रहें। पहली बार भारतभूमि के तट के दर्शन हुए तो नवजीवन मिला। एक बार पुर्तगालियों के फंदे से बचकर हम भाग निकले और केरल देश के धन्य भाग नागरिकों, सौराष्ट्र के सेठियों और महामेदपाट के अश्व विक्रेता व्यापारियों के साथ-साथ मालव में आए। उज्जयिनी में हमने महाकाल और क्षिप्रामैया के दर्शन किए। देवी क्षिप्रा के विषय में

मैंने एक तुच्छ तुकवन्दी लिखी है, किसी दिन सुनाऊँगा। महाकाल के पंडितों ने हमें देव-मंदिर के द्वार पर 'म्लेच्छ' कहकर दुत्कार दिया। मेरे साथी तो निराश होकर सराय में लौट गए। मैं तीन दिन निराहार वहीं बैठा रहा तो महामहन्त ने दया दिखाकर अपने साथ दर्शन कराए।" और जैसे दर्शन के अनन्त आनन्द के इस भार को संभालने में असमर्थ उसके लोचन बरसे, कण्ठ गद्‌गद् हुआ, समूचा शरीर सिहर उठा।

तब दूसरा फ्रांसीसी, जो यंत्रकार था, आज्ञा पाकर बोला—

"कुमार! हमारे बादशाह ने हिंदू-सूर्य, सम्राट् रायमल्ल की सेवा में और मैत्री सहायता का संदेश भेजा था। हम सम्राट् की सेवा में मेदपाट जा रहे हैं। तुर्क भारत और पश्चिम दोनों के शत्रु हैं। उनके विरुद्ध हमारे बादशाह सम्राट् को सहयोग देना चाहते हैं।

"संदेश आप सम्राट् तक पहुँचाएँ। हम कृतज्ञ हैं कि फिरंगी-नरेश हिन्दू-सूर्य के लिए शुभ-कामना रखते हैं। किन्तु क्षमा करें, एक विदेशी को आर्यावर्त से निकालने के लिए दूसरे विदेशी को आमन्त्रण देना, हमारी नीति-परम्परा के प्रतिकूल है। अभी आर्यों की तलवारें म्यान से बाहर हैं, अभी भारत की धरती वीरों से विहीन नहीं हुई है। तुर्क, खिलजी और लोदी चाहे कितने ही प्रबल हों भारत-सपूतों के मन में उनको लेकर भय नहीं है। तन पर केसरिया, हथेली पर शीश और मन पर एकलिंग का आसन रहे तो तुर्क, खिलजी और लोदी क्या, समस्त ससार की संहारमयी शक्तियाँ भी मिलकर भारत को अपने शांतिमय धर्म-पथ से नहीं डिगा सकतीं।........आपने हमारे परम प्रतापी राजराजेश्वर पुरु का नाम सुना होगा। जो समस्त बाधाओं के, यूनानी राजा सिकन्दर से जूझे। और चक्रवर्ती चन्द्रगुप्त की कहानी अभी हमें याद है। चारणराज, आपकी क्या राय है?"

"युवराज, आपके विचार जानकर मैं धन्य हूं। हिंदू-सूर्य-सम्राट् रायमल के नाती से हमें यही आशा थी। मैंने तो फ्रांसीसी अधिकारियों से पहले ही कह दिया था कि सूरजवंश के सच्चे पूत विदेशियों का योग लेकर, दूसरे विदेशी से लड़ना कभी पसंद नहीं करेंगे।"

'क्योंकि, हमारे पूर्वज—राजेश्वर जयचंद की भयानक भूल का परिणाम आज भी हमारे सामने सुलग रहा है ?" कहते-कहते कुमार का चेहरा रोष से लाल हो गया। फिर कुछ सोचकर बोले—

'हमने रोमानी, यूनानी, और अन्य फिरंगी यात्रियों के मुँह से फ्रांस देश की स्वतंत्रता की देवी जोन की गाथाएँ सुनी हैं। चारणराज क्या आप हमें देवी की कथा सुनाना पसंद करेंगे ?' इस पर रूसी इतिहासकार झुककर क्षमा माँगते हुए कहने लगा—

"बीच में बोलने की अभद्रता के लिए राजन् मेरे अपराध पर ध्यान न दें। चारणराज ने देवी जोन और आंग्ल-जातीय फिरंगियों के साके से सम्बन्धित काव्य लिखा है। उस साके में ये देवी के साथ थे।" अपने नाम का उल्लेख सुनकर कवि ने विनम्रतावश सिर झुका लिया।

राजकुमार ने कहा—'यह तो और भी आनंद की बात है। चारणराज हमारा निवेदन और निमन्त्रण स्वीकार कीजिए और आज, आप सब सज्जन हमारे अतिथि बनकर रहिए। कल, हम आपकी यात्रा का पूरा प्रबंध कर देंगे। सायकालीन भोज के उपरान्त, हम देवी की कथा सुनेंगे।" फिर रूपराम की ओर देखकर आदेश दिया—

"प्रबन्ध किया जाए !"

"जो आज्ञा देव !" कहकर, सेवक चला गया।

राजकुमार मेदिनीराय—चारणराज और उनके साथियों को विदा करने के लिए, स्वयं नगे पैरों खेमे से बाहर आए।

●

: १४ :

माधुरी ने पूछा—

"मैं कहाँ हूँ ?" उसने आँखें खोलकर अपने आसपास देखा। दूधिया चाँदनी चारोंओर झमाचम चमक रही थी। आकाश में इतनी तारिकाओं के बीच चन्दा अकेला था। तारिकाएँ अपने स्वप्नों में लीन थीं और चन्दा उनकी स्वप्निल छवि देखकर मुसकरा रहा था।

माधुरी ने इधर-उधर गौर से देखा और उस स्थान को पहचानने का प्रयत्न किया। परन्तु वह कभी अपने पिता, नगरश्रेष्ठि के रंगभवन से दूर बाहर न गई थी। इसलिए उस स्थान को देखकर भी पहचान न सकी।

यह एक सुन्दर आस्तान था। किसी जमाने में चन्द मस्ताने फ़कीर यहाँ पड़े रहते थे। चिमटे की आवाज़ पर वे बड़े गहरे और रसीले सुर में प्रेम और विरह के दास्तान गाया करते थे। लेकिन इस समय यह आस्तान उजड़ा हुआ था।

उज्जयिनी के राजनगर से पर्याप्त दूरी पर नदी के तट से कुछ हटकर, एक ऊँचे टीले पर किसी पीर की एक बड़ी दरगाह थी। आसपास वृक्षों का घना झुरमुट था।

मज़ार के आसपास इमली के पाँच पेड़ थे और उनकी छाया में मज़ार बना हुआ था और जैसे बाहरी रंगीनियों, हलचलों और घटाओं से बेखबर पीर अपने मज़ार में अचल समाधि में तल्लीन सोया था।

अब इस स्थान पर कोई न आता था, वर्षा के दिनों में नदी की बाढ़ के पानी के सिवाय, जो आगे और आगे बढ़कर, कगारों पर

चढकर मजार की इमलियों को छूकर जैसे अपनी कोई मनौती पूरी करता था। लोग कहते थे किसी युग और काल में एक बहुत ही खूब सूरत और मासूम-लेकिन पागल लड़की, इस मजार पर अपने घने लम्बे केश बिखेरे, कपोल अपना मजार की शिला पर टिकाए दिन-दिनभर, और रात-रात भर बैठी रहती थी। न वह कुछ खाती थी और न वह कुछ पीती थी। अथवा उसे अपने भोजन-पान की भी सुध नहीं थी।

लोग-साधारण लोग भय, विस्मय और शंका, अन्ध-विश्वास के काल्पनिक प्रेतो से डरकर इस स्थान पर कभी भी आने का नाम नहीं लेते थे।

दरगाह के नीचे एक बडा-सा कमरेनुमा खोखला और खाली भाग था। ऊपरी सतह से छोटे-से एक द्वार से सीढियो का रास्ता इस भाग में जाता था। लेकिन यह गुप्त भाग किसी को ज्ञात नहीं था, सिर्फ उस एक फकीर को जो सदाकदा चाँदनी और अँधेरी रातों में यहाँ आया करता था।

आया करता था और अपने भक्तो के मन की मुराद पूरी करता था।

मुँह पर काला बुर्का डाले लम्बे कद की एक सुन्दरी इस वक्त माधुरी के पास खड़ी थी। उसके हाथ में जगली तालाबों के घने काले और खूँख्वार मगर की पूँछ का बना चाबुक था। यह काँटेदार चाबुक बहुत लम्बा था और एक ही झपट में दूर से दूर खड़े हुए आदमी या प्राणी को अपनी ओर खींच लेता था।

आज इस खूनी और जहरीले चाबुक की चपेट में आई थी उज्ज-यिनी के नगर सेट्ठि की एकमात्र सुकुमारी कन्या माधुरी।

इसे यहाँ कौन लाया था ? यह यहाँ क्योंकर आई थी ?

दीपादेवी ने उस दिन बेसुध माधुरी को पहले तो मदिरा पिला कर असावधानी में उसके मन के रहस्य जान लेना चाहा। परन्तु जब यह देखा कि बेसुध माधुरी पर मदिरा का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। और उसके बोलने या बड़बड़ाने की कोई आशा नहीं है तो अपनी दासी काशी की सहायता से वह माधुरी को पीर के मजार तक ले आई।

दीपादेवी ने बड़े हकीम को कहलाकर, आज की रात सोना बनाने का कीमिया मालूम करने की विनती की थी। और इसलाम खाँ ने भी आश्वासन दिया था कि वह इसमें, कीमिया को हासिल करने में दीपादेवी की मदद करेगा, लेकिन, किसी खास काम की से वजह इसलाम खाँ बाहर चला गया। और दीपादेवी के लिए काशी को छोड़कर और कोई सहारा न रहा।

फिर माधुरी की बला सर पर सवार थी। दीपा को यह पूरा भरोसा था कि अगर माधुरी को पूरा दण्ड दिया जाय तो वह मेदिनीराय के बारे में बहुत कुछ बतला देगी। लेकिन, माधुरी लगातार बेहोश थी।

"मैं कहाँ हूँ ?" माधुरी ने फिर से पूछा और उत्तर में बुर्कापोश दीपा खिलखिलाई।

"तुम वहीं हो, जहाँ तुम्हें होना चाहिए।"

"मैं यहाँ क्यों हूँ ?"

"पीर का चढ़ावा बनकर! आज मुझे यहाँ के फकीर का नजराना देना है और सुन्दरि, तुम से अच्छा नजराना और क्या हो सकता है ?"

माधुरी उठकर अपनी जगह बैठ गई और चारों ओर का उजड़ा सूनापन देखकर सहम गई। उसने बुर्कापोश छाया से पूछा—

"और तुम कौन हो ?"

'मैं तुम्हारी मौत हूँ!" और सूखे काठ पर नाचने वाली चिन-गारियों की तरह, इमली की आड़ में खड़ी वह बुर्कापोश छाया—दीपा जोर से खिलखिलाई।

उसकी खिलखिलाहट मोतियों की महँगी लड़ों-सी थी। लेकिन खामोश चाँदनी रात इस खिलखिलाहट से खुशनुमा न बनकर औ भी खौफनाक हो गई।

'तुम मुझे क्यों मारना चाहती हो ?" माधुरी ने अत्यन्त भोलेप से पूछा।

"मारना चाहती हूँ, इसलिए कि तुम अपने कुल पर कलंक लगाक राजकुमार के पास भाग जाना चाहती हो!"